ISSN NUMBER : 2455-9717

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 3, अंक : 11
अक्टूबर-दिसम्बर 2018
मूल्य 50 रुपये

वह चेहरा
बहार के फूल की तरह ताज़ा था
और आँखें
पहली मोहब्बत की तरह शफ़्फ़ाक
लेकिन उसके हाथों में
तरकारी काटते रहने की लकीरें थी
और उन लकीरों में
बर्तन माँजने की राख जमी थी
उसके हाथ
उसके चेहरे से 20 साल बड़े थे
-परवीन शाकिर

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

विमर्श - नक़्क़ाशीदार केबिनेट
संपादक : पंकज सुबीर

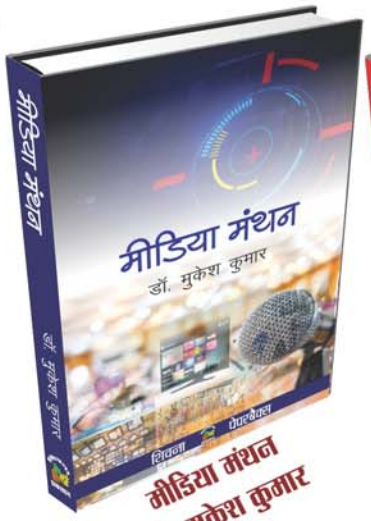

मीडिया मंथन
डॉ. मुकेश कुमार

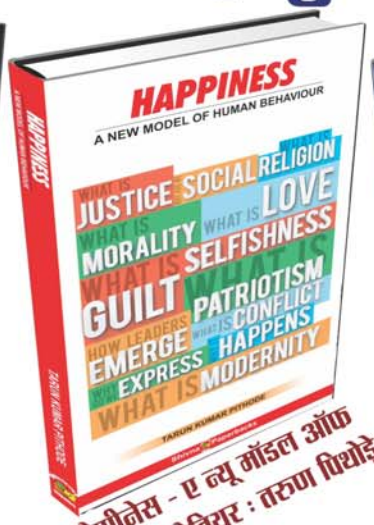

हैप्पीनेस - ए न्यू मॉडल ऑफ ह्यूमन बिहेवियर : तरुण पिथोड़े

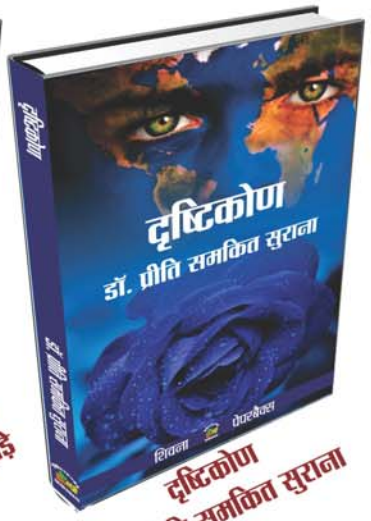

दृष्टिकोण
डॉ. प्रीति समकित सुराना

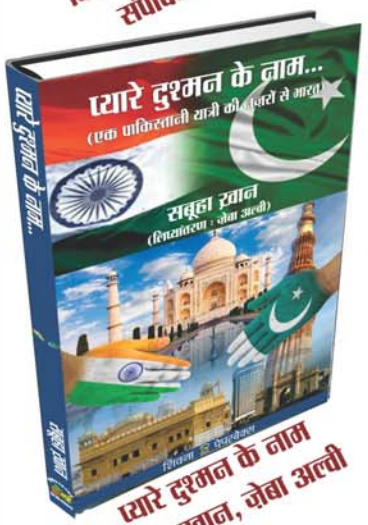

प्यारे दुश्मन के नाम
सबूहा ख़ान, ज़ेबा अल्वी

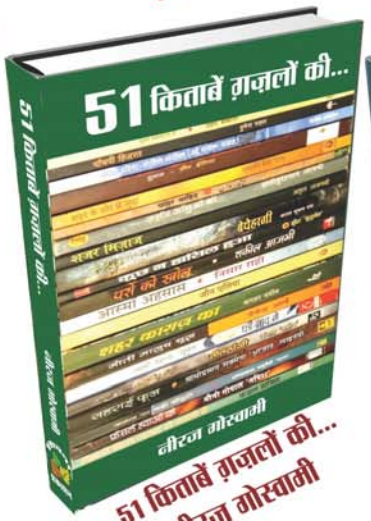

51 किताबें ग़ज़लों की...
नीरज गोस्वामी

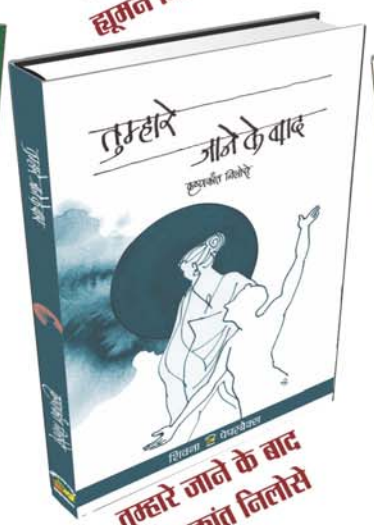

तुम्हारे जाने के बाद
कृष्णकांत निलोसे

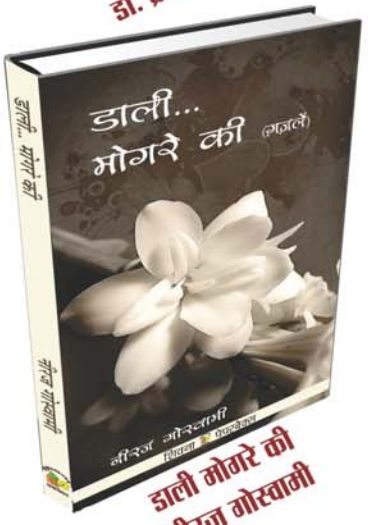

डाली मोगरे की
नीरज गोस्वामी

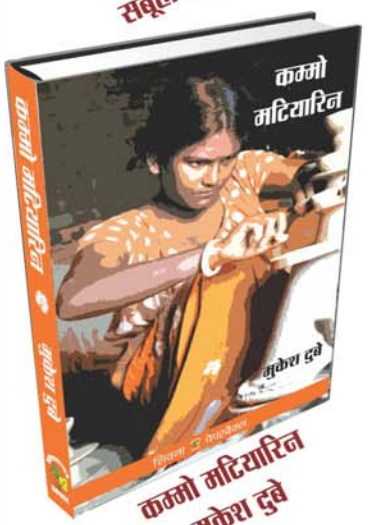

कम्मो मटियारिन
मुकेश दुबे

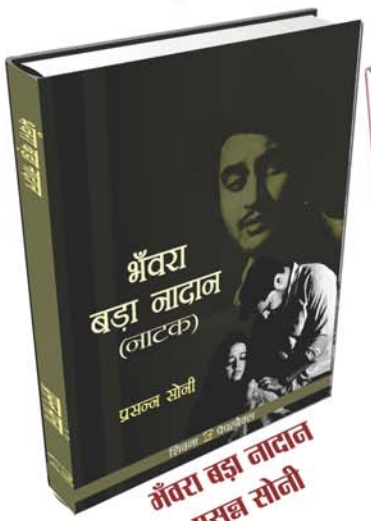

भँवरा बड़ा नादान
प्रसन्न सोनी

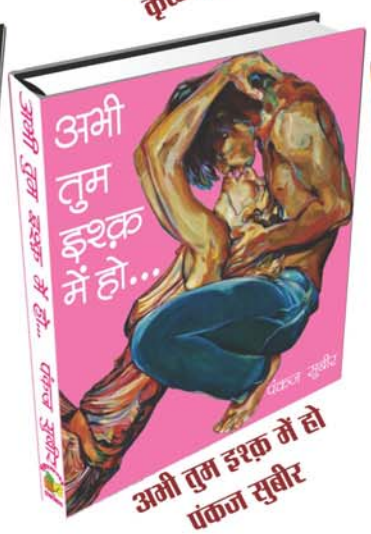

अभी तुम इश्क़ में हो
पंकज सुबीर

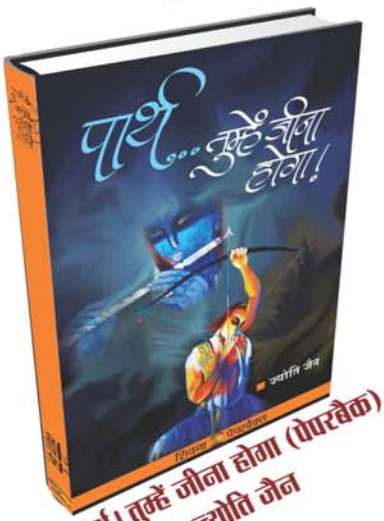

पार्थ! तुम्हें जीना होगा (पेपरबैक)
ज्योति जैन

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Paytm
https://www.paytm.com

ebay
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा
●
प्रबंध संपादक
नीरज गोस्वामी
●
संपादक
पंकज सुबीर
●
कार्यकारी संपादक
शहरयार
●
सह संपादक
पारुल सिंह
●
छायाकार
राजेन्द्र शर्मा
●
डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी
●
संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan
●
एक प्रति : 50 रुपये,
(विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण :
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

शिवना साहित्यिकी
वर्ष : 3, अंक : 11
त्रैमासिक : अक्टूबर-दिसम्बर 2018
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
परवीन शाकिर

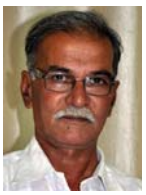
आवरण चित्र
राजेन्द्र शर्मा

इस अंक में

कुछ यूँ...
आवरण कविता / परवीन शाकिर
संपादकीय / शहरयार / 4
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 5
विशेष पुस्तक
मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा
रमेश उपाध्याय
समीक्षक : डॉ. राकेश कुमार / 6
पीढ़ियाँ आमने-सामने
इस हमाम में / सूर्यबाला
समीक्षक : राहुल देव / 9
विमर्श
पेड़ ख़ाली नहीं है / नरेन्द्र नागदेव
विमर्श : गोविन्द सेन / 11
शोध-आलेख
नारी अस्मिता का प्रश्न / त्रिशिला तोंडारे / 13
डायरी
नग्गर - रोरिख़ और प्रणव का नगर
पल्लवी त्रिवेदी / 15
फ़िल्म समीक्षा के बहाने
मुल्क, संजू / वीरेन्द्र जैन / 17
पुस्तक चर्चा
हत्यारी सदी में ... / गौतम राजऋषि / मुकेश निर्विकार / 19
सतरंगी मन / अरुण लाल / शिल्पा शर्मा / 21
वह मुक़ाम कुछ और / अशोक 'अंजुम' / उदय सिंह 'अनुज' / 36
शतदल / सुरेश सौरभ / डाक्टर मृदुला शुक्ला / 41
समीक्षा
अस्सी घाट का बाँसुरी वाला / डॉ. सीमा शर्मा / तेजेन्द्र सिंह लूथरा / 20
तुम्हारे जाने के बाद / प्रकाश कान्त / कृष्णकान्त निलोसे / 22
मदारीपुर जंक्शन / ओम निश्चल / बालेन्दु द्विवेदी / 24
जो घर फूँके आपना / मलय जैन / अरुणेंद्र नाथ वर्मा / 26
हैश, टैग और मैं / प्रभाशंकर उपाध्याय / अरुण अर्णव खरे / 28
यायावरी...यादों की / समीर लाल 'समीर' / नीरज गोस्वामी / 30
झीरम का अधूरा सच / अनिल द्विवेदी / कुणाल शुक्ला और प्रीति उपाध्याय / 32
विज्ञप्ति भर बारिश / सवाई सिंह शेखावत / ओम नागर / 33
चीड़ के वनों में लगी आग / आशा खत्री 'लता' / आशा शैली / 34
सच, समय और साक्ष्य
थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर' / डॉ. रामप्रकाश वर्मा / शैलेन्द्र शरण / 35
कर्फ़्यू लगा है / अशोक गुजराती / प्रकाश पुरोहित / 37
कहत कबीर / सत्यानंद 'सत्य' / डॉ. सुरेश पटेल / 38
जोकर ज़िन्दाबाद / अरविन्द कुमार खेड़े / शशिकांत सिंह 'शशि' / 40
मूल्यहीनता का संत्रास / सतीश राठी / डॉ. लता अग्रवाल / 42

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

संपादकीय

यह मेरा जिओ नंबर है

शहरयार

shaharyarcj@gmail.com
+91-9806162184

क्रांति के लिए जिस प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता होती है, वह इन दिनों उत्पादित ही नहीं हो रहा है। जैसे हम अपने इस वर्तमान समय की ही बात करें, तो इस समय लगभग सारे बुद्धिजीवियों की एक बड़ी चिंता है कि कुछ बड़ी कंपनियाँ भारत में आर्थिक असमानता की खाई को और गहरा, और चौड़ा करती जा रही हैं। विशेषकर एक कंपनी को लेकर तो बुद्धिजीवियों की भृकुटियाँ हमेशा ही तनी रहती हैं। गाहे-बगाहे आप इन्हें उक्त कंपनी के मालिक को सार्वजनिक मंचों से गरियाते हुए पाएँगे। मगर इस तस्वीर का एक दूसरा मज़ेदार पहलू यह भी है कि आपके मोबाइल पर अचानक किसी दिन इनमें से ही किसी बुद्धिजीवी का कॉल किसी अंजान नंबर से आ जाता है। जब आप कहते हैं कि 'अरे! यह कौन सा नंबर है आपका ? मेरे पास तो आपका दूसरा नंबर सेव है।' तो उधर से उत्तर मिलता है 'इसे भी सेव कर लीजिए यह हमारा 'जिओ' का नंबर है, आपको तो पता है कि उस पर बहुत सस्ता पड़ता है सब कुछ।' हैरानी की बात यह है कि ऊपर जिस कंपनी की बात की गई है, तथा जिसे यह गाहे-बगाहे मंचों से गरियाते रहते हैं 'जिओ' उसी कंपनी का है। शायद ऐसे ही लोगों के लिए कहावत बनाई गई थी 'गुड़ खाना और गुलगुलों से परहेज़ करना'। आपको कंपनी से परहेज़ है, कंपनी के मालिक से परहेज़ है, मगर कंपनी के उत्पादों से नहीं है। और इसलिए परहेज़ नहीं है क्योंकि उसे कंपनी के उत्पाद आपको सबसे सस्ते पड़ रहे हैं। क्रांति की मशालें लेकर देश भर में घूम रहे हर क्रांतिवीर के मोबाइल में इस समय ये सिम ही डली हुई है, और इसी सिम से प्राप्त नेट का उपयोग करते हुए ये कंपनी के विरोध में क्रांति के संदेश विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफार्म्स पर प्रसारित कर रहे हैं। यह आज की क्रांति का नैतिक पक्ष है। किसी भी क्रांति के नैतिक पक्ष पर सबसे ज़्यादा बात की जानी चाहिए, क्योंकि क्रांति का नैतिक पक्ष ही सबसे मज़बूत होना चाहिए। यदि नैतिक पक्ष मज़बूत नहीं है तो समझिए कि क्रांति का सफल होना संभव ही नहीं है। मोबाइल के सस्ते नेटवर्क के लोभ में यदि हम अपनी क्रांति के नैतिक पक्ष को उसी के पास गिरवी रख सकते हैं, जिसके विरोध में हम क्रांति करने निकले हैं, तो फिर वह क्रांति किस प्रकार सफल हो सकती है। यह इस बात को भी दर्शाता है कि हम सब असल में बिकाऊ हो गए हैं, एक छोटे से लालच की बौछार से हमारे हाथ में थमी क्रांति की मशाल को कोई भी बुझा सकता है। और फिर यहाँ तो हमारा सामना देश के सबसे बड़े औद्योगिक घराने से है, उसके पास तो कई-कई हथकंडे हैं, हमारे सामने लालच का आकर्षक प्रस्ताव रखने के। जैसे यही एक मोबाइल सिम वास्तव में वही एक आकर्षक प्रस्ताव ही तो है।

आज के समय में यदि कोई तरीक़ा पूँजीवाद, बाज़ारवाद तथा आर्थिक असमानता से लड़ने हेतु सबसे अच्छा है, तो वह है गाँधी जी का वह तरीक़ा जिसमें उन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलवाई थीं। लेकिन आज यदि इस तरीक़े की बात भी की जाए तो इसे मूर्खता ही समझा जाएगा। यदि आज कोई सामने आए और कहे कि वह पूँजीवाद और आर्थिक असमानता के विरोध में अमुक उत्पाद की होली जलाना चाह रहा है, तो कितने लोग आएँगे अपने उस प्रिय उत्पाद को होली में डालने ? कोई नहीं आएगा। असल में हो यह गया है कि हम अब उस सुविधाजनक स्थिति में अपने आपको बनाए रखना चाहते हैं, जहाँ हम क्रांति की लच्छेदार बातें कर के तालियाँ बटोर सकें, मगर हम स्वयं भी यह नहीं चाहते हैं कि क्रांति-व्रांति जैसी कोई बात हो। क्रांति अब हमारे लिए बस एक फ़ेसबुक या व्हाट्सएप की पोस्ट है और हमारी मजबूरी यह है कि यह पोस्ट लगाने के लिए जिओ का नेटवर्क हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है। हम बस क्रांति की बातें करना चाहते हैं, हम कोई क्रांति चाहते नहीं है। बातें करने से किसी को कोई नुकसान या ऐतराज़ नहीं होता है 'बातें हैं बातों का क्या ?' बातें करते हुए लोग व्यवस्था को भी बहुत पसंद आते हैं, हर व्यवस्था चाहती भी यही है कि लोग बस बातें करते रहें। अब हमारी समस्या यह है कि ढेर सारी और देर तक बातें करने के लिए एक बार फिर हमें मुफ़्त का टॉक टाइम चाहिए, आख़िर को हम रू-ब-रू तो बातें कर नहीं रहे, करना भी नहीं चाहते। हम तो अपने मोबाइल पर ही देर तक बातें करना चाहते हैं। बातें करना चाहते हैं क्रांति की। तो आपको बातें करना है, इसलिए आपके वास्ते मुफ़्त का टॉक टाइम है न, जी भर के बातें कीजिए। इसका मतलब यह है कि आप भी अपने आप को यह तसल्ली तो दे ही सकते हैं कि असल में तो आपने यह जो सिम अपने मोबाइल में डाल रखी है, यह क्रांति की लम्बी चर्चाओं हेतु डाल रखी है, इसमें आपका कोई भी व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है। आप तो एक पवित्र उद्देश्य के लिए इस सिम को अपनाए हुए हैं। 'साधन की पवित्रता' जैसी बातें अब पुरानी हो चुकी हैं, अब उन पुरानी बातों से क्रांति नहीं आने वाली। अब नया समय है और इस नए समय में आपके लिए सबसे बड़ी ज़रूरी चीज़ है चौबीस घंटे कनेक्टिविटी और वह भी ऐसी कनेक्टिविटी जो लगभग मुफ़्त में आपको उपलब्ध हो। सब लगे हैं। याद कीजिए आपको भी किसी न किसी ने तो कहा ही होगा 'सेव कर लीजिए इसे, यह मेरा जिओ नंबर है।' जीओ और जीते रहो..।

आपका ही

शहरयार

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

विशेष पुस्तक

मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा

लेखक : रमेश उपाध्याय

समीक्षक : डॉ. राकेश कुमार

प्रकाशक : शब्दसंधान प्रकाशन

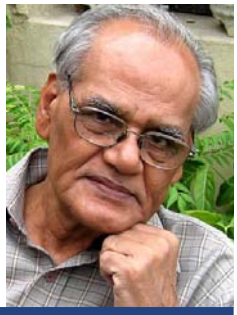

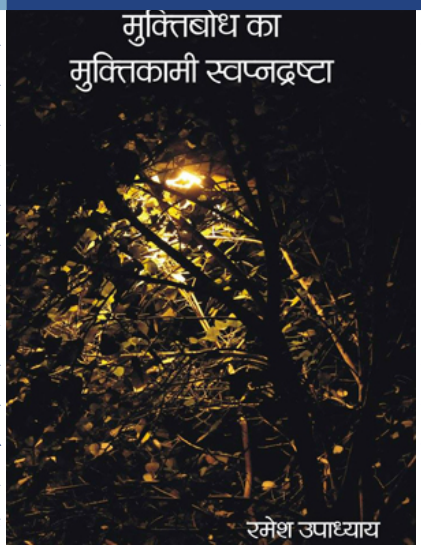

एक ही वर्ष में किसी किताब का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो जाए तो इस बात का अंदाज़ा सहज लगाया जा सकता है कि उस किताब को पाठकों ने पसंद किया है। वरिष्ठ कथाकार, आलोचक रमेश उपाध्याय की शब्दसंधान प्रकाशन से आई किताब 'मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा' इसी श्रेणी की किताब है। यह किताब जनवरी 2017 में प्रकाशित हुई और इसी वर्ष जनवरी 2018 में इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। गजानन माधव मुक्तिबोध हिंदी कविता के एक ऐसे कवि हैं जिन पर बात किए बिना हम हिंदी कविता को उसकी समग्रता में नहीं समझ सकते और सम्भवत: अकेले ऐसे कवि हैं जिन्हें समझने के लिए अक्सर सामान्य पाठक को कठिनाई होती है। यह कठिनाई इसलिए नहीं है कि मुक्तिबोध दुरूह लिखते थे या फिर मुक्तिबोध की भाषा में कोई दिक़्क़त है; बल्कि यह कठिनाई उन बिम्बों, छवियों और संकेतों को उस रूप में न समझ पाने में होती है जिस रूप में मुक्तिबोध ने उन्हें रचा था। दूसरी बात मुक्तिबोध सम्भवत: अकेले ऐसे कवि हैं जिन्हें एक साथ आधुनिकतावादी, अस्तित्ववादी, मनोविश्लेषणवादी, प्रगतिवादी, मार्क्सवादी, रहस्यवादी कह दिया जाता है जबकि ये सभी संज्ञाएँ अपनी विशिष्ट अर्थच्छवियाँ रखती हैं। इनके अलग-अलग स्कूल हैं। तीसरी बात मुक्तिबोध की आलोचना में अक्सर मुक्तिबोध की कविता कम बोलती है आलोचक की समझ अधिक।

अक्सर रचनाओं की व्याख्या में आलोचना कवि की बात को ही भूल जाती है और कविता पर अनेक ऐसे पर्दे डाल देती है कि कवि का मंतव्य तक स्पष्ट नहीं हो पाता। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि अक्सर कविता की आलोचना में कवि से अधिक आलोचक का अपना मन और विचार बोल रहा होता है। परंतु शब्द संधान प्रकाशन से आई, वरिष्ठ कथाकार-चिंतक रमेश उपाध्याय की नई किताब 'मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा' कवि शमशेर बहादुर सिंह की इस बात कि 'बात बोलेगी हम नहीं' पर पूरी उतरती है क्योंकि इस किताब में मुक्तिबोध की कविताओं को ही अपनी बात कहने का पूरा अवसर मिला है। यह तो माना ही जाता है कि मुक्तिबोध की कविताएँ आख्यान मूलक हैं; परंतु इस किताब में पहली बार कथाकार रमेश उपाध्याय उनकी कविताओं को ही एक कथा की तरह प्रस्तुत करते हैं और इस कथा का नायक बनता है-एक मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा। जब यह किताब प्रकाशित हुई तो अनेक आलोचकों ने इस किताब को अपने-अपने तरीके से परखा और अपनी राय रखी, अनेक गोष्ठियों में इस किताब के अनूठेपन पर चर्चा हुई क्योंकि पूरी किताब इस स्वप्नद्रष्टा की निगाहों से देखे गए जीवन, समाज, व्यवस्था, सत्ताओं के चरित्र को दिखाती है। आलोचक हिमांशु पंड्या ने जयपुर गोष्ठी में कहा था, 'मुक्तिबोध को पढ़ते और पढ़ाते इतने साल हो गए और मैं मुक्तिबोध के इस काव्य-नायक को जान ही नया पाया। रमेश उपाध्याय जी ने यह नायक मुक्तिबोध की कविताओं में खोजा है।' यह स्वप्नद्रष्टा हमारे जैसा ही एक मध्यवर्गीय संवेदनशील मनुष्य है जिसका परिचय किताब में निरंतर मिलता रहता है। उपाध्याय जी इसका परिचय देते हुए लिखते हैं- 'बात यह है कि वह एक मध्यवर्गीय व्यक्ति है, जिसके सपने बड़े हैं, पर वास्तविक जीवन क्षुद्र है। उसे अपना मार्ग मालूम है और उस पर वह धैर्यपूर्वक चल भी रहा है, किंतु उसके हृदय में किसी शाप-सी उदासी भरी है। प्राण है, बुद्धि है, बल है, ओज है, किंतु वह भीतर से विवश है, रो रहा है। जीवन में स्नेह है, आदर्श है, तेज है, तर्क है, किंतु भीतर चिंता है, चुपचाप बैठी व्यथा है। बाहर से वह भव्य है, उच्च है, मृदु है, गंभीर है, तन्मय है, पूजनीय है, किंतु भीतर से नि:संज्ञ और शंकाकुल है। बाहर से सफल है, किंतु भीतर से पथभ्रष्ट।'

यह किताब अपने पूरी अप्रोच में एक अलग तरह की आलोचना की पुस्तक है। इसके अनूठेपन को बढ़ाती है इस किताब के दूसरे संस्करण की भूमिका। यदि आप मुक्तिबोध से सम्बंधित साहित्यिक मिथकों, आरोपों और उनकी रचनाओं के पाठ-कुपाठ को गहरे से जानना चाहते हैं तो दूसरे संस्करण की भूमिका आपको एक महत्त्वपूर्ण अंतर्दृष्टि देती है। इस लम्बी भूमिका में रमेश उपाध्याय उन तमाम रचनात्मक दबावों का ज़िक्र करते हैं जिनके कारण मुक्तिबोध की कविताओं को वे बिलकुल नए सिरे से देखने पर मजबूर हुए। मलयज ने साही को उद्धृत करते हुए बताया था कि आलोचना का काम रेडियो की सुई को सही मीटर पर लगाने जैसा है और यही काम रमेश उपाध्याय अपनी इस अनूठी कथात्मक आलोचना में करते हैं। वे मुक्तिबोध की कविताओं में से कथानायक 'मुकामुस्व' को सामने लाकर प्रस्तुत कर देते हैं जो उनकी कविताओं में हमेशा से मौजूद था पर उस पर किसी का अलग से

ध्यान नहीं गया था और न ही उस कथा-नायक के जीवन के सवालों, संघर्षों, निराशाओं को मुक्तिबोध के 'निजी' आत्मसंघर्ष से बाहर लाकर देखने का प्रयास किया गया था।

रमेश उपाध्याय, मुक्तिबोध को हिंदी की यथार्थवादी परम्परा का सच्चा प्रतिनिधि बताते हैं वे इस बात को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार अनुभववाद को नया और आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को पुरानी समझ बताने का मुक्तिबोध विरोध करते हैं। रमेश उपाध्याय बताते हैं कि मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष मात्र उनका आत्मसंघर्ष नहीं अपितु साहित्य और समाज के स्तर पर किया गया राजनीतिक संघर्ष था; जबकि अनेक ऐसी भी कोशिशें भी हुईं कि इस संघर्ष को मात्र मुक्तिबोध का संघर्ष बना कर प्रस्तुत कर दिया जाए। दूसरे संस्करण की भूमिका में रमेश उपाध्याय कवि मुक्तिबोध की यथार्थवाद की यात्रा को 'मुकामुस्व' की यात्रा से जोड़ कर देखने के तर्क समझाते हुए लिखते हैं, 'मुक्तिबोध आरम्भ से ही यथार्थवादी नहीं थे। उनका यथार्थवाद सर्जनात्मक तथा आलोचनात्मक संघर्ष करते हुए विकसित हुआ था। मैंने मुकामुस्व की कहानी कहते हुए इस चरित्र का विकास नहीं दिखाया है, मुक्तिबोध के यथार्थवाद का भी विकास दिखाया है।'

मुक्तिबोध की कविताओं में से उभरता है कथा नायक-मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा है, जिसे संक्षेप में रमेश उपाध्याय 'मुकामुस्व' कहते हैं। मुकामुस्व अपने आस-पास फैले अधंकार से भयभीत भी होता है और स्वार्थों और सुविधाजीविता के पाश में बँधे अपने पथ के साथियों को पथ से डिगते हुए भी देखता है। यह स्वप्नद्रष्टा भले ही साधारण जीवन जीता हो पर क्रांतिचेता मनुष्य है। रमेश उपाध्याय की यह किताब मुक्तिबोध के इसी स्वप्नद्रष्टा के रचनात्मक-भावात्मक और विचारधारात्मक संघर्ष को उनकी कविताओं के माध्यम से पाठकों के सामने जीवित कर देती है। मुकामुस्व अपने लिए यथास्थितिवाद के सुविधा और सुख के तैयार रास्ते की बजाय परिवर्तन और क्रांति के कठिन रास्ते का चुनाव करता है। वह जानता है कि यही रास्ता न केवल उसे बल्कि उस जैसे जन-जन को मुक्त करेगा।

वास्तव में 'मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा', 'जनोन्मुख किंतु रूमानी स्वप्नद्रष्टा', 'रूमानीपन से यथार्थवाद की ओर', 'असफल क्रांति से उपजी निराशा के दौर में', 'निराशा और पस्ती को दूर भगाने वाले स्वप्न', 'भूमंडलीय यथार्थ और यथार्थवाद' तथा 'पूर्ण मनुष्य अथवा परिपूर्ण मनुष्यता का स्वप्न' जैसे सात शीर्षकों में विभाजित यह किताब मुक्तिबोध के काव्य में एक अंतर्यात्रा है। इस अंतर्यात्रा में उपाध्याय जी स्वयं मुक्तिबोध के मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा के साथ यात्रा कर रहे हैं और पाठकों को भी इस किताब के माध्यम से, इस अंतर्यात्रा में शामिल होने का रचनात्मक निमंत्रण दे रहे हैं। यह अंतर्यात्रा जहाँ एक ओर मुक्तिबोध के काव्य के भीतर की है, वहीं उस बड़े समय और यथार्थ की भी, जिसमें मुक्तिबोध रह रहे थे या अब हम रह रहे हैं। और अनेक मायनों में यह यात्रा उस बड़े विचार की भी है जिसे इतिहासकार सुनील खिलनानी 'भारत का विचार' कहते हैं। अनेक मायनों में यह अंतर्यात्रा दुनिया भर में फैले उस मनुष्य समुदाय की भी है जो पूँजीवादी दासता और सामंती जड़ता में बंधा हुआ है, जिसकी मुक्ति इस दुनिया में नए समाज और नए मनुष्य की निर्मिति में सहायक होगी। यह अतंर्यात्रा ऐसे अनेक बीहड़, अँधेरे, भयानक, डरावने प्रदेशों से होकर गुज़रती है जिनसे गुज़रते समय मनुष्य के होने तक से भरोसा उठ जाता है। तो यह अंतर्यात्रा अनेक चमकीले सूर्यों, और मणियों से भरी खदानों से भी गुज़रती है, जिनकी रोशनी में मानवता का भविष्य देखा जा सकता है। यह तो तय है कि इस अंतर्यात्रा में उनके साथ चलने का साहस और इच्छा रखने वाला संवेदनशील पाठक भी कहीं न कहीं अपने भीतर-बाहर की यात्रा करता चलता है।

मुक्तिबोध की कविताएँ क्रांति की बात करती हैं, पर उस क्रांति का स्वरूप क्या है? रमेश उपाध्याय 'असफल क्रांति से उपजी हताशा के दौर में' नामक अनुभाग में बताते हैं कि मुक्तिबोध जनक्रांति को एक महाश्रमिक के रूप में देखते थे। जन-जन में आस्था रखने वाले कवि की क्रांति का इससे अधिक तार्किक प्रतीक और क्या हो सकता है? महाश्रमिक युगों-युगों की दासता को तोड़ने वाला है। वही नए मानव समाज की रचना करेगा। परंतु यह स्वप्नद्रष्टा कोरा स्वप्नजीवी नहीं है। वह यह भी देखता है कि ऐसे समाज में जहाँ मध्यवर्ग मुक्तिकामी ही नहीं बल्कि अवसरवादी, स्वार्थी और अनेक बार शोषकों का क्रीतदास भी है, वहीं यदि क्रांति असफल हो जाए तो अचरज नहीं होना चाहिए। उपाध्याय जी मुक्तिबोध की कविताओ के माध्यम से यह भी दिखाते हैं कि मुकामुस्व इसी लिए इन अवसरवादी मध्यवर्गीय लोगों से नफरत भी करता है।

रमेश उपाध्याय बताते हैं कि मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा जिस क्रांति की बात कह रहा है वह क्रांति मात्र भारत की ही नहीं होगी, बल्कि वैश्विक स्तर की क्रांति ही वास्तव में पूरी मानवता को मुक्त करा सकती है। जिस प्रकार पूँजीवाद एक वैश्विक व्यवस्था है, उसी प्रकार समाजवाद भी एक वैश्विक व्यवस्था है। एक बड़ी वैश्विक व्यवस्था ही दूसरी बड़ी वैश्विक व्यवस्था को बदल सकती है। 'मुकामुस्व के स्वप्न की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह जिस क्रांति का स्वप्न देखता है, वह यद्यपि भारतीय क्रांति है, किंतु वह केवल भारतीय क्रांति नहीं, वैश्विक या भूमंडलीय क्रांति है। और वह दुनिया की अंतिम क्रांति होगी, जिसके बाद एक नई दुनिया बनाई जाएगी। अत: उसके लिए किया जाने वाला संघर्ष मानवता का अंतिम संग्राम होगा।'

मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' हिंदी कविता एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। यह लम्बी कविता आज़ादी के बाद के भारत की राजनीतिक-सामाजिक संस्कृति की सर्वाधिक सटीक और वास्तविक आलोचना मानी जाती है। इस किताब का पूर्ण मनुष्य अथवा परिपूर्ण मनुष्यता का स्वप्न शीर्षक से एक बड़ा अनुभाग इसी लम्बी कविता को समर्पित है। फैंटेसी के शिल्प में रची गई मुक्तिबोध की इस कविता के विषय में अक्सर यह सवाल भी उठाया जाता है कि 'अंधेरे में' का 'मैं' और 'वह' क्या अलग-अलग व्यक्ति हैं अथवा यह एक ही व्यक्ति के भीतर आदर्शवाद और व्यवहारवाद के विवेक का कथा रूपक है। रमेश उपाध्याय इस कविता को मुकामुस्व के स्वप्न की कथा की तरह प्रस्तुत करते हैं। उनका मुकामुस्व कहता है, 'मैं एक

मध्यवर्गीय व्यक्ति हूँ, जो मुक्तिचेता तो है, मुक्तिकामी भी है, किंतु घर-परिवार और नौकरी-चाकरी के बंधनों में बँधा एक मामूली आदमी है। हाँ, मेरे सर्जक ने मुझे ऐसे संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनों से भर दिया है कि मेरी जीवन-दृष्टि बहुत विशद और विश्व-दृष्टि बहुत व्यापक हो गई है। मैं वर्तमान यथार्थ की भयावहताओं को देखता हूँ, किंतु साथ-साथ उसी यथार्थ में निहित मुक्ति की संभावनाओं को भी देखता हूँ। मगर मेरी दिक्कत यह है कि जिस भविष्य का स्वप्न मैं देखता हूँ, वह अभी अँधेरे में है। अत: उसको साकार करने के लिए फिलहाल मैं कल्पनाओं और फंतासियों का सहारा लेता हूँ।'

कविता के फैंटेसी के शिल्प और उसमें वर्णित बिम्बों को अक्सर अकादमिक हलकों में दूरुह और जटिल बता दिया जाता है। उपाध्याय जी इस किताब में इन बिम्बों-प्रतीकों को मुक्तिबोध की कविता के माध्यम से सरलता से समझाते हैं। 'पूर्ण मनुष्य अथवा परिपूर्ण मनुष्यता का स्वप्न' शीर्षक के अनुभाग में उपाध्याय जी 'अंधेरे में' कविता को एक कथा की तरह प्रस्तुत करते हैं। वे कविता को गद्य की शक्ल में प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि अनेक मायनों में यह इस कविता का एकदम नया पाठ है। इस पाठ से गुज़रते हुए कविता के अनेक जटिल कहे जाने वाले बिम्ब और प्रतीक अपने संदर्भों के साथ स्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए कविता का एक प्रसंग देखिए-'जैसे क्रांतिकारी दल को मैं कहूँगा 'अंधकार के स्तूप-सा भयंकर बरगद' या 'उपेक्षितों, वंचितों, गरीबों और बेघरों का रैनबसेरा' और वहाँ रहने वाले क्रांतिकारी को कहूँगा 'सिरफिरा पागल'। यहाँ उपाध्याय जी इन गम्भीर और जटिल बिम्बों को इस प्रकार तरतीब देते हैं कि पूरा भाव स्पष्ट हो जाता है। या फिर एक दूसरे प्रसंग में देखिए-'उन चमकते-दमकते मणि-रत्नों को हाथों में लेकर ध्यान से देखा, तो अचानक मैंने पाया कि वे मणियाँ और रत्न नहीं, बल्कि मेरे ही अनुभव हैं, मेरी ही वेदनाएँ हैं, मेरे ही विवेक के निष्कर्षों से निकले वे क्रांतिकारी विचार हैं, जो यहाँ पड़े हुए हैं। मैं उन्हें खतरनाक समझता था। यह सोचकर कि इन्हें व्यक्त करने के कारण मुझे दंडस्वरूप मार डाला गया, तो मेरे बच्चे भीख माँगेंगे, मैं उन्हें छिपाकर रखता था या बेकार समझकर उस अँधेरी गुफा में डाल देता था। लेकिन अब मुझे लगा कि मैंने उन्हें गुहावास देकर लोकहित के क्षेत्र से वंचित कर दिया था, जनोपयोग से वर्जित कर दिया था, उन्हें निषिद्ध करके खोह में डाल दिया था। मगर अब डरने का समय नहीं है।'

यह सवाल उठाया जा सकता है कि मुक्तिबोध पर इतनी आलोचना पुस्तकें आ चुकी हैं तो इस किताब में ऐसा क्या है? जो इसे विशिष्ट बनाता है। इसका जवाब यही होगा कि यह किताब मुक्तिबोध के काव्य के आलोचनात्मक मूल्यांकन का बाह्य प्रयास भर नहीं है और न ही रमेश उपाध्याय स्वयं ऐसा कोई दावा करते हैं कि यह मुक्तिबोध के काव्य का मुकम्मल मूल्यांकन है। वे लिखते हैं-'मैंने मुक्तिबोध की कविताओं की व्याख्या अथवा विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया है। मैंने उनकी सब नहीं, कुछ ही कविताएँ ली हैं और उनमें से उभरने वाले मुकामुस्व को यथासंभव मुक्तिबोध के शब्दों में ही प्रस्तुत किया है। बस उन शब्दों को मैंने एक तरतीब दी है, जिसमें यह तरकीब अपनाई गई है कि उनसे मुक्तिबोध द्वारा देखे और दिखाए गए स्वप्न तथा उनको देखने की उनकी दृष्टि स्वत: ही स्पष्ट होती चले। साथ ही उन संदर्भों का भी कुछ संकेत मिलता जाए, जो कविताओं के मर्म तक पहुँचने के लिए आवश्यक हैं।' (प्रस्तावना) मुक्तिबोध की कविताओं की यह आलोचनात्मक कथा उन कड़ियों को जोड़ने में सक्षम है, जो अक्सर मुक्तिबोध की कविताओं में बिम्बों-प्रतीकों, संकेतों में रह जाती हैं। यह सृजनात्मक आलोचना पाठक को उन सूत्रों की ओर ले जाता है जिनसे मुक्तिबोध की कविताएँ और अधिक स्पष्ट हो जाती हैं। रमेश उपाध्याय पाठकों को दूसरे संस्करण की भूमिका में आगाह भी करते हैं कि मुक्तिबोध की कविताओं के सूत्र उनके जीवन में ही नहीं बल्कि उनके समय और समाज में हैं। उन सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में हैं जो उनके समय को बनाते हैं। रमेश उपाध्याय अपनी इस पुस्तक में यही काम करते हैं। यह किताब एक अनूठा प्रयोग है जो न केवल रचनात्मक है बल्कि आलोचनात्मक भी। आलोचना सभ्यता समीक्षा के प्रतिमान को तभी छू सकती है कि जब वह रचना को व्यक्तिगत जीवन की व्यथा-कथा से बाहर लाकर व्यापक समाज के जीवन की संघर्ष कथा के रूप में देख पाए। रमेश उपाध्याय अपने इस प्रयास में मुक्तिबोध की कविता के आस्वादन के समानांतर एक कथात्मक आस्वादन की विनम्र किंतु ठोस प्रस्तावना देते हैं। वे हमारे समय एक ऐसे कवि को सामान्य पाठक के लिए भी सुलभ करते हैं जो जटिल साहित्यिक शब्दावली की दीवार से पार नहीं जा पाता। वे मुक्तिबोध की कविता को पाठकों के क़रीब लेकर आते हैं। वे कार्ल क्रोएबर (पुस्तक रिटैलिंग-रिरीडिंग) को इस संदर्भ में उद्धृत करते हैं, 'कहानी मूलत: कहने और फिर-फिर कहने की चीज़ है, भले ही उसका रूप मौखिक हो या लिखित, क्योंकि आख्यान की मूल प्रकृति और प्रवृत्ति ही यह कि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक होता है। लिखी कहानी भी लेखक द्वारा कही और पाठक द्वारा 'सुनी' जाती है- और अगर वह अच्छी कहानी है तो फिर-फिर कही जाती है और फिर-फिर सुनी जाती है भले ही हर बार के सुनने या पढ़ने में वह बदल जाती हो। इसका अर्थ यह भी है कि कहानी का श्रोता या पाठक उसका मज़ा लेने वाला उपभोक्ता नहीं होता, बल्कि कहानी कहने वाले की तरह ही 'सृजनशील' होता है इसीलिए उसे अपने ही ढंग से सुनता-समझता है।' मुक्तिबोध की कविताओं की कथा के रूप में रमेश उपाध्याय द्वारा यह प्रस्तुति भी, मुक्तिबोध का उनका किया गया पाठ है। यह पाठ नया है, हमारी प्रचलित आलोचना पद्धति से बिलकुल भिन्न, हमारी प्रचलित व्याख्या पद्धति से बिलकुल भिन्न, मुक्तिबोध की कविताओं को सुनने-समझने की प्रचलित पद्धति से बिलकुल भिन्न। पर एक बात है जो इसे विशिष्ट बनाती है वह है हमारे भीतर के आदर्शवादी, सिद्धांतवादी रक्तालोक स्नात पुरुष को नया नाम देना। वह है - मुकामुस्व यानी मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा।

❑❑❑

ई-112, आस्था कुंज अपार्टमेंट्स,सैक्टर-18,रोहिणी, दिल्ली-89
मोबाइल : 9899686959

पीढ़ियाँ आमने-सामने

इस हमाम में

आलेख : राहुल देव

लेखक : सूर्यबाला

प्रकाशन : अमन प्रकाशन, कानपुर

'इस हमाम में' प्रख्यात कथाकार एवं व्यंग्यकार सूर्यबाला का पाँचवाँ तथा प्रतिनिधि व्यंग्य संग्रह है। लेखिका ने अपने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है कि वह मूलत: कथाकार हैं। इसलिए इनके व्यंग्य सायास लेखन नही हैं बल्कि वह तो समय-समाज और जीवन की तमाम विसंगतियों से गुज़रते हुए अनायास ही रचे गए मालूम होते हैं। इस कारण सूर्यबाला के इस नए व्यंग्य संग्रह को पढ़ते हुए आप सहज-सरल तरीके से व्यंग्य की ताज़गी महसूस करते हैं। उन्होंने कम मात्रा में व्यंग्यलेखन किया है लेकिन वह गुणवत्ता के स्तर पर इतना सशक्त ठहरता है कि उसके आगे बड़े-बड़े व्यंग्यकार न ठहर पाएँ। इसलिए उनका नाम समकालीन व्यंग्यकारों के बीच बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है। समकालीन स्त्री व्यंग्यकारों में तो वह सबसे ऊपर हैं।

अमूमन व्यंग्य लेखक अपने लेखनकाल में स्तंभलेखन की छपास के चक्कर में उसके साहित्यिक रूप की उपेक्षा कर जाते हैं। कम शब्दों में प्रतिदिन लिखने से वह एक व्यंग्यनुमा टिप्पणी ही बन पाती है। कह सकते हैं कि भ्रूण को ही समय से पहले जन्म देकर उसे मार दिया जाता है। वह ठीक प्रकार से विकसित ही नही होने पाता। आज ख़बर आई, कल लेख पेश। लेखक तो अपना काम पूरा कर संतुष्ट हो जाता है, सम्पादक को तो ख़ैर जो भी मिल जाए छापना ही होता है लेकिन पाठक निराश होता है। बाद में भी वे उसे संग्रह में शामिल करने की जल्दी में उस पर ज़रूरी काम करना आवश्यक नही समझते और इस तरह लगातार न जाने कितनी प्रतिभाएँ काल के गाल में समा जाया करती हैं। उनकी रचनाशीलता एक निश्चित पैटर्न को फॉलो कर नष्टप्राय हो जाती है और वे व्यंग्य की साहित्यिक परम्परा से विमुख हो इस क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पाते। ऐसे व्यंग्यकारों को एक बार यह संग्रह ज़रूर पढ़ना चाहिए।

वरिष्ठ कथाकार मैत्रेयी पुष्पा ने कहीं कहा था कि- 'साहित्य सूचना नहीं है। साहित्य अनुभवों से आता है, अनुभवों से ही विचार पैदा होता है।' यह बात सूर्यबाला जी पर एकदम सही बैठती है। इस संग्रह में संग्रहीत व्यंग्य उनके अनुभव की खान से निकले हुए हीरों की तरह से हैं जिसे उन्होंने एक लम्बी और सतत साहित्य साधना से पाया है। उनकी प्रवाहपूर्ण सरल भाषा, व्यंग्यों के विषय का कथात्मक ट्रीटमेंट तथा व्यंग्य लिखने की समझ एक आदर्श व्यंग्य लेखन का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। इस कारण यह तो तय है कि इनके व्यंग्य कम ही सही लेकिन साहित्य जगत में लम्बे समय तक टिकने वाले हैं।

समीक्ष्य संग्रह में लेखिका के कुल 29 व्यंग्य संग्रहीत हैं। फ्लैप पर प्रख्यात व्यंग्यकार ज्ञान चतुर्वेदी की टिप्पणी और भूमिका प्रेम जन्मेजय की है। संग्रह के सभी व्यंग्य पठनीय हैं और साहित्यिक मानकों पर खरे उतरते हैं। ऐसा लगता है कि संग्रह के लिए लेखिका ने अपने व्यंग्यों का चुनाव बहुत सोच-समझकर किया है। इनमें साहित्यिक और राजनीतिक समाज में फैली हुई विसंगतियों पर कटाक्ष करना उन्हें सबसे ज़्यादा प्रिय है। विसंगतियों को अनावृत करने का काम करने वाला, राजनीति को मशाल बनकर रास्ता दिखाने वाला साहित्य आज स्वयं तमाम कारणों से विसंगतियों की चपेट में है। संग्रह का पहला व्यंग्य 'हिंदी साहित्य के कुछ कठिन दौर' इस बात की शिनाख़्त करता है। यह व्यंग्य हमें सच्चाई से रू-ब-रू करवाता हुआ सोचने पर मजबूर करता है कि आख़िर क्यों आज साहित्यिक कार्यक्रमों में वक्ताओं के लिए श्रोताओं का अकाल पड़ गया है। साहित्य के पाठक क्यों कम हो रहे हैं। 'पति-पत्नी और हिंदी साहित्य- शीर्षक व्यंग्य में वह स्त्री चेतना के अंधड़ में बेचारे बने हुए पतियों पर अपना पक्ष रखती हुई एक तीर से कई निशाने साधने में सफल हुई हैं। जहाँ एक तरफ वे साहित्य में 'प्रेमियों' की तुलना में उनके सही स्थान पर प्रश्न उठाती हैं तो वहीं साहित्य में विमर्शों का ठेका लेने वाली लेखिकाओं सह कार्यकर्ताओं को 'आक्रामक तेवर वाली महिला कार्यकर्ता' कहकर व्यंग्यपूर्ण टिपण्णी की है। इस व्यंग्य में उन्होंने मुहावरों का भी अच्छा इस्तेमाल किया है। 'बड़े आदमियों की बातें' शीर्षक व्यंग्य में लेखिका ने बड़े आदमियों के सभी संभव गुण व्यंग्यपूर्ण ढंग से चित्रित किए हैं। इस व्यंग्य में वह लिखती हैं, 'प्राय: बड़े आदमियों के अन्दर सामने वाले को छोटा आदमी समझ लेने की ग़लतफ़हमी भी बड़ी जल्दी कुंडली मारकर बैठ जाया करती है। विशेषकर यदि वह अभिवादन में पहल कर देता है।' 'एक पुरस्कार यात्रा' शीर्षक व्यंग्य हास्य और करुणा के सहमेल से उपजे व्यंग्य का बेहतरीन उदाहरण है। इन दोनों भावों को एक साथ लेते हुए व्यंग्य लिखना एक मुश्किल काम है जिसे बड़ी है सहजता के साथ सूर्यबाला लिख ले जाती हैं। इस व्यंग्य में कई जगह बड़े मारक पंच हैं जैसे कि, 'पुरस्कार की राशि और स्त्री की उम्र पूछना उसकी अस्मिता को ठेस पहुँचाना है।' एक उम्र निकल जाने के बाद

साहित्यकारों को पुरस्कार दिए जाने की चल पड़ी परम्परा किस तरह किसी के लिए एक त्रासद अंत हो सकती है और उसके बाद भी किस तरह से ज़िम्मेदार लोग पुरस्कार समारोह संपन्न करते हैं यह व्यंग्य पढ़कर आप स्वयं ही जान सकते हैं। कथात्मक शैली में लिखा गया 'देशसेवा के अखाड़े में' शीर्षक व्यंग्य आपको तथाकथित देशसेवकों से सावधान करता है। 'पापी पपीता रे' शीर्षक व्यंग्य ललित निबंध की तरह एक नए तरह के ललित व्यंग्य की सृष्टि करता है। 'चौरस्ते पर संवाद' शीर्षक व्यंग्य संवाद शैली में लिखे गए व्यंग्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार देखा जाय तो सूर्यबाला जी के यहाँ व्यंग्यों को लेकर तमाम तरह के शैलीगत प्रयोग दिखाई देते हैं। लोकतंत्र में जूते 'खाने' और 'खिलाने' को लेकर लिखे गए 'पादुका प्रसंग' शीर्षक दो व्यंग्य एक साहसी अभिव्यक्ति की व्यंग्यकार ही लिख सकती है। वह व्यंग्य लिखते हुए एकदम स्वतंत्र लगती हैं। उनकी नज़रों में जो चढ़ गया फिर उसका बचकर निकलना मुश्किल है। इसीलिए कहा जाता है कि व्यंग्य शब्दों में आपके आक्रोश की गवाही है।

'एक और दंत कथा' शीर्षक व्यंग्य बड़े ही संतुलन के साथ लिखा गया अद्वितीय व्यंग्य है। लेखिका जिस तरह व्यक्तिगत जीवन की दाँत टूटने जैसी एक सामान्य सी समस्या में व्यापक अर्थ भरते हुए व्यंग्य रचती हैं वह अद्भुत है। एक अंश देखें, 'दाँत की आतंकवादी हरकतों को मैं भारत सरकार की तरह लगातार कायराना करार दे रही थी लेकिन सरकार की ही तरह कर कुछ नही पा रही थी।' सूर्यबाला अपने व्यंग्यों के बीच-बीच में बड़ी विचारपरक टिप्पणी भी कर जाती हैं। इन व्यंग्यों में आवेग के साथ विचारतत्व भी बड़े ही प्रभावी ढंग से पाठक तक संप्रेषित हो जाता है। 'स्त्री की सारी ऊर्जा, सारी शक्ति आज बेशर्मी को बोल्ड बनाने पर ही तो तुली है। चूँकि मामला चाहे आरक्षण का हो या अश्लीलता का, व्यक्ति का हो या व्यवस्था का, अभिव्यक्ति का हो या आधुनिकता का, हर तरफ बेशर्म हँसी का ही तो बोलबाला है। कूटनीति, पिछड़ों को फँसाने की चाल पर हँस रही है, ग़रीब-गुरबे अपनी लाचारी के धिक्कार पर।' इस संग्रह का हर एक व्यंग्य अपने विषय चयन की दृष्टि से अनूठा है। आप अगला हर व्यंग्य पढ़ते हुए किसी न किसी नएपन और रचनात्मक ताजगी से रू-ब-रू होते हैं। इसका एक बढ़िया उदाहरण है 'एक अभूतपूर्व डिमोंसट्रेशन : खाना ईट का'। नएपन से संयुक्त यह एक सुगठित व्यंग्य रचना है। आप स्वयं एक छोटा सा अंश देखें, 'मैं : लेकिन यह क्या सभ्यता का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है कि मनुष्य ईट खाए ? वे : नहीं ! सभ्यता के चरमोत्कर्ष के युग में तो मनुष्य मनुष्य को खाने लगेगा।' ज़िम्मेदारों को फटकार लगाती हुई यह रचना आवास, भोजन जैसी मूलभूत आवश्यकताओं और बेरोज़गारी जैसी विकराल समस्या को पूरी संवेदना के साथ सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखे जाने का आग्रह करती है। इस पुस्तक के कुछ और प्रभावी अंश देखें-

1- 'हिंदी साहित्य के लेखकों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है- एक, पुरस्कृत लेखक और दूसरे, अपुरस्कृत लेखक। मोटे तौर पर पुरस्कृत लेखक वे होते हैं जो गालियाँ लिखते हैं और अपुरस्कृत लेखक वे होते हैं जो गालियाँ देते हैं।' (हिंदी साहित्य की पुरस्कार परम्परा)

2- 'वे व्यावसायिकता के कीचड़ को अपनी रचनात्मकता के गंगाजल से बराबर धोती-फटकती रहती हैं और निष्ठावान लेखकों को भी हमेशा साफ़-सुथरा रहने की सलाह देती हैं।' (हाय, मैंने क्यों नहीं लिखा सीरियल)

3- 'सप्ताहांत पर यह अमेरिकी हिन्दुस्तानी चौपाया बनकर आउटिंग पर निकलता है- 'टू हैव फन' और एंजोयमेंट' के लिए। यहाँ पैरों से कोई नही चलता, सब पहियों से चलते हैं। इसलिए कहावत है कि अमेरिका आकर सब दोपाए से चौपाए बन जाते हैं। सड़कों पर सिर्फ कारें दिखती हैं, घरों में सिर्फ मशीनें। आदमी कहीं नज़र नहीं आता।' (प्रभुजी, तुम डॉलर हम पानी)

4- 'शोधानुसार साठ का हुआ रचनाकार अचानक बहुत विनम्र हो जाता है। बोलना-चालना भी काफी कम कर देता है। वह पचास के हुए लेखकों की तरह बिना बुलाए सभा-सम्मेलनों में नही जाता, न बात-बात पर उलझता-पलझता ही है; बल्कि पहले स्वयं को निमंत्रित करवाने की जुगाड़ बिठाता है।' (साठ के हुए लेखक)

5- 'ज़माना इतनी तरक्की कर चुका है कि सच और झूठ जैसी कोई चीज़ रही ही नहीं; बात की बात में सच को झूठ और झूठ को सच की ऐसी शक्ल दे दी जाती है कि पता ही नहीं चलता कि हक़ीक़त में जो है, वह सच है या झूठ है। इसलिए कोई झंझट होता ही नहीं। जब चाहे, जहाँ चाहे, झूठ वाले सच का फल हड़प लेते हैं और सच वाले झूठों की जमात में शामिल कर लिए जाते हैं।' (सामना यमराज से)

6- 'यह स्त्री विमर्श का स्वर्ण युग है और स्त्री इस विमर्श का स्वर्ण मृग। (स्त्री विमर्श का स्वर्ण युग)

7- 'शोध बताते हैं कि दरअसल हिंदी भाषा थी ही नहीं। वह ख़ास-ख़ास अवसरों पर पहनी जानी वाली पोशाक थी, लगाया जाने वाला मुखौटा थी। वह एक ढपली थी, जिसपर लोग अपने-अपने राग गाया करते थे। वह चश्मा थी, जिसे लगाकर अनुदानों, पुरस्कारों की छाया में सांस्कृतिक यात्राओं का सुख लूटा जा सकता था। वह एक सीढ़ी थी, जिसके सहारे अकादमियों के मंच तक चढ़ा जा सकता था और करेंसी नोट थी, जिसे विशिष्ट आयोजनों पर सार्त्र, मार्क्स, ऑस्कर, वाइल्टानस्टॉप, चेखव और कामू के माध्यम से भुनाया जा सकता था। अपने देश की पिछली और अगली शताब्दियों के ग़रीब कवि, लेखकों में इसे भुनाने की औक़ात नही थी। ग्लानि और लज्जावश कबीर, सूर, तुलसी, रत्नाकर, भारतेंदु और महादेवी वर्मा, प्रसाद, निराला तक नेपथ्य में छुप जाया करते थे, राजमार्गों से हट जाया करते थे।' (अगली सदी का शोधपत्र)

'इस हमाम में' में शामिल व्यंग्य रचनाएँ पढ़कर व्यंग्य की सार्थक परम्परा का बोध होता है। यह निश्चित रूप से पढ़ने और गुनने ही नहीं बल्कि सँजोने योग्य पुस्तक है।

❐❐❐

7013, साहित्य सदन, कोतवाली मार्ग,
महमूदाबाद (अवध), सीतापुर, उ.प्र.
261203 मोबाइल: 08318773947
ईमेल : rahuldev.bly@gmail.com

विमर्श

पेड़ ख़ाली नहीं है

समीक्षक : गोविन्द सेन

लेखक : नरेन्द्र नागदेव

प्रकाशक : किताबघर प्रकाशन

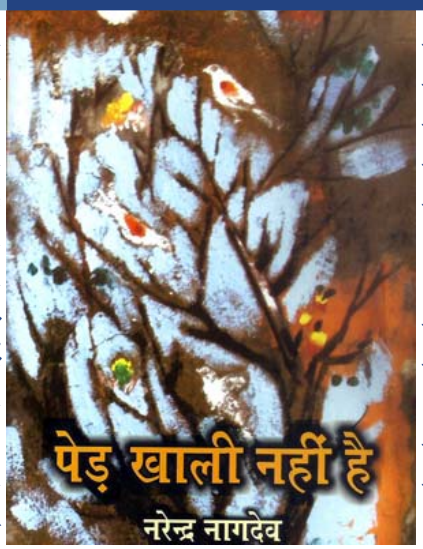

प्रतिष्ठित कथाकार नरेन्द्र नागदेव अलग ढंग से कहानियाँ बुनते हैं। इनकी कहानियों में फंतासी, रूपक, बिम्बों और प्रतीकों के ताने-बाने का दिलचस्प संयोजन होता है। संवेदना इन कहानियों का प्राण है और जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा इनका ध्येय। क्रूर समय की चपेट में आने वाले आदर्शवादी, मेहनती और ईमानदार आदमी के पक्ष में ये कथा रचनाएँ मज़बूती से खड़ी होती हैं। ये कहानियाँ मानवता को सर्वोपरि रखना चाहती हैं। इन रचनाओं में कल्पनाशीलता का ऐसा आलोक है कि यथार्थ का धरातल सहसा भासमान हो उठता है। इन कहानियों का फ़लक भी व्यापक है। संग्रह की पहली कहानी 'तम्बाकू लाना ज़रा' करीब दो सौ वर्ष पहले की कहानी है। नेकसिंह इस कहानी का मुख्य पात्र है। विलियम हेनरी इतिहास में ठगों, हत्यारों के उन्मूलन के लिए ख्यात रहा है। नेकसिंह एक नृशंस हत्यारे और ठग का पुत्र है। स्थिति कुछ ऐसी बनती है कि नेकसिंह को अपने पिता को पकड़वाने के लिए नैतिक रूप से बाध्य होना पड़ता है। यह कहानी पिता पुत्र के नाजुक संबंधों को मनोविज्ञान के आधार पर गहराई से चित्रित करती है। यहाँ नेकसिंह के मानसिक संघर्ष और संवेदना के सूक्ष्म तंतुओं का बख़ूबी अंकन हुआ है। यह एक लम्बी किन्तु कथारस से भरपूर पठनीय कहानी है।

'गिद्ध' कहानी की शुरूआत एक सजीव और अर्थपूर्ण फ़ोटो से होती है। फ़ोटो में सूखी धरती पर बावरा और कथावाचक तप्त आकाश को निहारते हुए खड़े हैं। दरकी हुई इस धरती पर एक सूखा कत्थई ठूँठ भी है। जिस पर एक गिद्ध धैर्यपूर्वक बैठा है। यह फ़ोटो बहुत कुछ कहता है। बावरे की निगाह तप्त आकाश पर टिकी है कि वह कब मेहरबान हो। जबकि गिद्ध की दृष्टि बावरे और कथावाचक पर रही होगी कि उसे इन दोनों का माँस नोंचने का अवसर कब मिले। गाँव में पानी की समस्या हो जाने से मुखिया सहित पूरा गाँव पलायन कर जाता है। बावरे को गाँव नाजायज़ मानकर उससे नफ़रत करता है और उसे साथ नहीं ले जाता। बावरे को सूना गाँव अधिक आत्मीय लगता है, क्योंकि वहाँ उससे नफ़रत करने वाला कोई नहीं था। वह अकेले ही गाँव के लिए कुआँ खोदने लगता है और अंततः कुआँ खोद लेता है। पर वापस गाँव में आने पर मुखिया और ग्रामवासी उस कुँए पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। मुखिया बावरे पर चोरी का इल्ज़ाम लगा थाने में पहुँचा देता है। कुआँ खोदना उसके लिए गुनाह हो जाता है। इस तरह मुखिया और गाँव बावरे के लिए गिद्ध में बदल जाते हैं। कहानी में शोषण की कई परतों को बहुत ही रचनात्मक ढंग से खोला गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक अन्य कहानी है 'दाराशिकोह की उपनिषद'। यह क्रूर और कट्टर मुग़ल शासक औरंगज़ेब के संवेदनशील, भावुक, उदार, विद्वान और सभी धर्मों का आदर करने वाले भाई दाराशिकोह की दुखांत कहानी है। महत्त्वाकांक्षी और कट्टरवादी औरंगज़ेब को उदार दाराशिकोह की धर्मनिरपेक्षता रास नहीं आती। अंत में वह उसका सर कलम करके अपने पिता शाहजहाँ के पास भेज देता है। पराजित अपमानित दाराशिकोह और उसके स्वामिभक्त मोहर सिंह की यह कहानी बहुत झकझोरती है। यह सवाल आज भी बना हुआ है कि एक धर्मनिरपेक्ष संवेदनशील आदमी का क्या यही हश्र होता रहेगा? क्या धर्मनिरपेक्ष सोच का प्रतीक उपनिषद का वह पन्ना कभी धरती पर उतर सकेगा या आकाश में ही एक सुविचार बनकर उड़ता रहेगा?

जब कोई कथाकार अपनी कहानी के लिए कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि चुनता है तो उसके कंधे पर अनायास दुहरी ज़िम्मेदारी आ जाती है। पहली चुनौती तो यह कि उस विशिष्ट देशकाल की स्थिति और वातावरण का निर्माण करना तथा दूसरी यह कि उस समय के यथार्थ का आधुनिक समय के यथार्थ से समानता और प्रासंगिकता स्थापित करना। निश्चित ही नागदेव जी ने ये दोनों ही ज़िम्मेदारियाँ बख़ूबी निभाई हैं।

'गुमशुदा' अपनी ही दुनिया में खोए, एकाकी और विद्वान कुलभूषण अंकल की कहानी है। वे अपना पूरा जीवन मुंबई महानगर में गुज़ार कर सेवानिवृत हो अपने शहर लौट रहे हैं। उनका भतीजा और बहू उनके लौटकर आने की ख़बर से तनावग्रस्त हैं। भतीजा उन्हें लेने के लिए रेलवे स्टेशन जाता है। पर कुलभूषण अपने शहर नहीं पहुँचते, बीच में ही कहीं गुम हो जाते हैं। कुलभूषण एक ऐसे विद्वान व्यक्ति का प्रतीक हैं, जो प्रतिभा और योग्यता के मामले में जितना अव्वल होता है, दुनियावी मामलों में उतना ही असफल। फिर चाहे प्रख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ही क्यों न हो। भारत जैसे देश में नोबल पुरस्कार पाने वाले डॉ. हरगोविंद खुराना को भी दिल्ली में एक सामान्य नौकरी के लिए भी अयोग्य घोषित कर दिया

गया था। गुमशुदा कुलभूषण अंकल के बहाने कथाकार ने प्रतिभावान और वैज्ञानिकों के प्रति समाज और परिवार के दायित्वबोध की खूब बखिया उधेड़ी है।

'कवच' एक ऐसे शरीफ व्यक्ति की कहानी है, जो बिना अपराध किए इस या उस अपराध की सज़ा भुगतता है। यही उसकी नियति है। उसके मन में विचार आता है कि क्यों न ये अपराध कर ही लिए जाएँ ताकि मन में यह मलाल न रहे कि बिना कुछ किए धरे ही सज़ा भुगत रहा हूँ। वह अपने साथ गवाह लेकर अपराध करता है। पर अपराधीगण उसे हवालात में बंद नहीं होने देते। वे दरोगा को समझाते हैं कि इस शरीफ आदमी को बंद कर लिया गया तो हम अपने अपराध किसके मत्थे मढ़ेंगे? किसे दोषी बनाकर मारेंगे पीटेंगे ताकि उनकी निरपराध उजली छवि सुरक्षित रहे। यह शरीफ आदमी तो हमारा कवच है। यहाँ नागदेव जी अपनी तिर्यक दृष्टि से एक बड़ी विडम्बना को उजागर करते हैं।

कुछ कहानियों में नागदेव जी पात्रों की मनोविज्ञानिक गुत्थियों से पाठकों को रू-ब-रू कराते हैं। 'अब हँसी नहीं आती' और 'ताला खुल गया' कुछ ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'आगामी अमावस' शोषणकारी राजसत्ता का क्रूर निर्मम चेहरा सामने लाती है। 'छलांग' और 'वैनिशिंग पॉइंट' सम्बंधों को व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए भुनाने की अर्थपूर्ण कहानियाँ हैं। 'रुको तो ग्रांडपा' में गहरा तंज़ है। एक पुत्र अपने पिता की मरने की कामना इसलिए करता है कि उनका कमरा ख़ाली हो तो वह अच्छे किराए पर उठेगा। पर जब उनकी साँस अटकी ही रहती है, लोग श्रद्धावश उनके चरणों में चढ़ावा चढ़ाने लगते हैं तो वही लालची पुत्र चाहता है कि अब वह अपने प्राण न त्यागें। इस कहानी का वाचक पोता है। यहाँ ग्रांडपा की साँसें भीष्म पितामह की तरह अटकी हुई हैं। उनकी ज़िद थी कि वे एक खुशहाल दुनिया में ही अपनी अंतिम साँस लेंगे। 'किसलिए सुनामी' में वाचक बताता है कि जब आदमी के मन में पाप बढ़ जाता है, तो उसे अपनी औक़ात बताने के लिए कुदरत का कहर टूटता है।

नागदेव जी की कहानियों में भले-बुरे, झूठे-सच्चे, खरे-खोटे, ठग-हत्यारे, अवसरवादी, भावुक, भोले, विद्वान, चालाक, सरल, रहस्यमयी, चुप्पे, पराजित, निर्मम, क्रूर, संवेदनशील, कलाकार आदि विविध पात्रों का भरापूरा रोचक संसार है। यह ज़रूरी नहीं कि उनकी कहानी का पात्र कोई मानव ही हो, वह परिंदा भी हो सकता है और वह भी कहानी के मुख्य पात्र के रूप में। शीर्षक कहानी 'पेड़ ख़ाली नहीं है' का मुख्य पात्र भी एक परिंदा है, जो दशहरा मैदान के एक चबूतरे पर ऐसे पड़ा मिला था जैसे डेढ़ सौ साल पहले नीदरलैंड में कलाकार वेन गॉग सरसों के पीले खेतों में ज़ख़्मी हालत में मिला था। परिंदा ज़िन्दगी भर ऊँचे सपनों और आदर्श की हवा में ऊँचाई पर उड़ता रहा। उसे होश ही नहीं रहा कि कभी उसे एक घोंसले की ज़रूरत भी पड़ेगी। कोई भी परिंदा हो, हमेशा आसमान में उड़ता हुआ तो नहीं रह सकता। समय रहते उसने अपने लिए एक घोंसले का बंदोबस्त नहीं किया था। अंत में जब हिंसक बाज की चपेट में आकर घायल हुआ, तब कहीं उसे घोंसले की सुध आई। पर तब तक उसके घोंसले के लिए प्रापर्टी डीलर के पास कोई पेड़ ही नहीं बचा था। परिंदा हो या सृजनधरमी हरेक के साथ ऐसी दुर्घटना संभावित है। किसी बड़े, उदात्त ध्येय पाने के मुगालते में रमे हुए व्यक्ति को यथार्थ की ठोस ज़मीन नज़र नहीं आती। इस कहानी में अनोखी रचनात्मकता के साथ एक सृजनशील और ऊँचे ध्येय में लीन आदमी के हश्र को बहुत प्रभावी ढंग से निरूपित किया गया है। यह बहुअर्थी कहानी बढ़ते हुए बाज़ारवाद और घटते हुए जीवन मूल्यों पर गंभीर टिप्पणी तो करती ही है, परोक्ष रूप से पर्यावरणीय चिंता भी प्रकट करती है।

संग्रह में कुल जमा तेरह कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों का फ़लक व्यापक है। ये कहानियाँ समय की सच्चाई को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करती हैं। यह ग़ौरतलब है कि इन कहानियों का सच केवल समकाल तक ही सिमटा हुआ नहीं है। इस सच का एक सिरा अतीत से जुड़ा है तो दूसरा सिरा भविष्य के गर्भ में छिपा है। इन कहानियाँ में अंकित सच देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ विस्तार पाता है। नागदेव जी इस बहुपरतीय सच की हर परत को सृजनात्मक कुशलता के साथ धैर्यपूर्वक खोलते हैं। पात्रों के मनोविज्ञान और उनकी परिस्थितियों के साथ इन कहानियों में एक ऐसा विश्वसनीय संसार रचा गया है कि अतीत, वर्तमान और भविष्य का सच सहसा उजागर हो जाता है। वर्तमान समय की विसंगतियाँ और विडम्बनाओं की जड़ें कहीं न कहीं अतीत में धँसी होती हैं। कई बार इतिहास खुद को दोहराता है। नागदेव जी इन सभी सन्दर्भों की पड़ताल करते हुए आज के सवालों से जूझते हैं। पात्रों के मनोजगत् में गहरे उतरते हैं और उनकी प्रतिक्रियाओं को कहानी में परिस्थितियों के अनुरूप प्रभावी ढंग से दर्ज करते हैं। नागदेव जी की कोई भी कहानी इकहरी नहीं है, वे बहुअर्थी हैं। पहले पाठ में अर्थ पकड़ने में असुविधा हो सकती है। कहानी का अगला पाठ दूसरा अर्थ भी दे सकता है। ये कहानियाँ शोषण की परंपरा और प्रक्रिया को प्रभावी ढंग से रेखांकित करती हैं। इन कहानियों में कल्पना और यथार्थ, वर्तमान और अतीत तथा सही और ग़लत का संघर्ष निरंतर चलता रहता है। पात्रों के मन की उथल पुथल को नागदेव जी बहुत सजीवता से प्रकट करते हैं। छोटे छोटे वाक्यों और एक ख़ास निजीपन के साथ नागदेव जी कहानी को कुछ ऐसे अंदाज़ में बढ़ाते हैं कि पाठक कथा के साथ बँधता चला जाता है। भाषा सहज, सरल, चित्रात्मक, प्रवाहपूर्ण, बहुअर्थी और पात्रानुकूल है। कहानियों में आए पक्षियों का मानवीकरण बहुत जीवंत है। नागदेव जी 'बंधु' शब्द से सम्बोधित कर पाठक से एक आत्मीय रिश्ता बना उसे कहानी में इत्मीनान से छोड़ देते हैं। कहानी का अंत भी कथाकार बहुत धैर्यपूर्वक करते हैं। पाठक को झटका नहीं देते, बल्कि ऐसी कोशिश करते हैं कि कहानी का सारतत्व पाठक जज़्ब कर ले। संग्रह में मुद्रण की त्रुटियाँ नगण्य हैं। किसी भी किताब का आवरण महत्त्वपूर्ण होता है। पाठक सबसे पहले आवरण ही देखता है। सच्चीदा नागदेव जी का अर्थपूर्ण आवरण किताब की शोभा को द्विगुणित करता है।

❐❐❐

राधारमण कॉलोनी, मनावर 454446 जिला धार मप्र मोबाइल: 9893010439

शोध-आलेख

नारी अस्मिता का प्रश्न

शोध समीक्षक : त्रिशिला तोंडारे
शोधार्थी, पी.एच.डी. (स्त्री विमर्श)
मुंबई विश्वविद्यालय

स्त्री-अस्मिता से अभिप्रायस्त्री के 'स्व' की 'पहचान' या उसके अस्तित्व से है। जब कोई व्यक्ति समाज, परिवार या परिवेश में अपने मुताबिक जीना चाहता है किंतु जी नहीं पाता है तब समाज और परिवार में वह अपने अस्तित्व की तलाश करता है। जबकि देखा जाय तो परिवार और समाज में मनुष्य का अधिकांश व्यक्तित्व दूसरों द्वारा निर्धारित होता रहा है। स्त्री को आज तक समाज और परिवार में बेटी, बहू, माँ के रूप में ही पहचाना जाता रहा है। लेकिन आज की स्त्री इन सभी बंधनों से निकलकर 'स्वतंत्र व्यक्ति' के रूप में अपनी 'पहचान' कायम करना चाहती है। फिर यहीं से शुरू हो जाती है उनकी अपनी अस्तित्व की तलाश।

रमणिका गुप्ता स्त्री-अस्तित्व के प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है - ''आख़िर अस्मिता है क्या ? दरअसल यह पुरुष के समान स्त्री का समान अधिकार स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरुष वर्चस्व का प्रतिरोध है। औरत का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है। सही मायने में स्त्री अस्मिता का अर्थ होगा स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव जिसमें स्त्री का खुद का दृष्टिकोण भी शामिल हो।'' वर्तमान समय में स्त्री के सामने स्त्री-अस्मिता का प्रश्न सबसे बड़ा प्रश्न है। स्त्री-अस्मिता की लड़ाई स्त्री के स्वाभिमान की लड़ाई है। भारतीय समाज में स्त्री-अस्मिता का प्रश्न आधुनिक चेतना का प्रतीक है। आधुनिक स्त्री को जब भारतीय परंपरा में अपना चेहरा दिखाई नहीं देता है तब वह अपनी परंपरा की तलाश करती हुई इतिहास में लौटती है और स्वयं को स्थापित कराना चाहती है। समाज में पुरुष वर्ग को यह समझना होगा कि ''स्त्री समानता की लड़ाई बुनियादी लड़ाई है। इससे उसे स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता एवं अस्मिता की पहचान मिलेगी। इस संघर्ष के प्रति तदर्थभाव, दयाभाव या सहानुभूतिभाव, स्त्री के संघर्ष एवं अवदान को कम करेगा। स्त्री की समानता के संघर्ष के प्रति दया या सहानुभूति की ज़रूरत नहीं है बल्कि यह महसूस करने की ज़रूरत है कि यह तो उसका अधिकार था जो उसे दिया जाना चाहिए।'' विश्व की सभी संस्कृतियों के केंद्र में पुरुष ही रहा है। सभी धर्मों के संस्थापक पुरुष ही माने गए हैं। ऐसा होने के कारण धर्म संस्कृति एवं सभ्यता के केंद्र में पुरुष को ही रखा गया है और स्त्री उसकी सहायक ही रही है।

नारी संबंधी भारतीय और पाश्चात्य मान्यताओं पर एक दृष्टिपात -नारी संबंधी भारतीय मान्यताएँ - धर्मपाल के अनुसार - ''निजी स्वार्थ वश तथा निजी वर्चस्व बनाए रखने के लिए पुरुषों ने अधिकतर नारी को स्वयं से हितकर प्रस्थापित किया। यही कारण है कि समूचे विश्व के पुरुष समान सोच रखते आए हैं। देव, ऋषि, मुनि, अवतार अथवा पुरुष सभी ने नारी की भर्त्सना की, उसमें अवगुण देखे और स्वयं को सर्वश्रेष्ठ जताने की गाथाएँ लिखी और कहीं यह विचार धारा नारी को पद दलित करने में सफल हुई और नारी आज भी इसी की शिकार है।'' पुरुष ने नारी को कभी सम्मान पूर्ण दृष्टि से नहीं देखा। यहाँ तक की उसे मानव रूप में स्वीकार करने में भी हिचकिचाता रहा है। आचार्य शंकराचार्य ने नारी की निंदा करते हुए कहा- ''द्वार किमेक नर कस्य नारी।'' अर्थात् नारी नरक का द्वार है। मनुस्मृति में उसे पुरुष द्वारा रक्षित बनाकर रखा है। तुलसीदास ने नारी को अवगुणों की जड़ तथा दु:खो की खान कहा है- ''अवगुण मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुख खानी।''

कबीर ने नारी को माया मोह का प्रतीक माना है। यही माया आत्मा पर मात्मा के बीच बाधा बनने के कारण वे उसका विरोध करते है। वे कहते है- 'नारी नसावै तीनि सुख, जानर पासै होई भगति मुक्ति निज ग्यान मै, पैसे न सकई कोई।।'' अर्थात् नारी निंदा की लंबी परंपरा भारतीय समाज और सभ्यता में भी चलती रही है यह सब पुरुष की दृष्टि का परिणाम है। एक ओर नारी को भोग वस्तु मानकर उस का तिरस्कार किया है तो दूसरी ओर उसे साधना में बाधक मानकर उसे प्रताड़ित किया गया है।

नारी संबंधी पाश्चात्य मान्यताएँ- अरस्तू ने कहा है, 'औरत अपने कुछ निश्चित लक्षणों (गुणों) की कमी के नाते औरत है। हमें औरतों का सम्मान करना चाहिए क्योंकि वह प्राकृतिक कमियों से पीड़ित है।' और सेंट थॉमस के निर्णय के अनुसार- नारी एक अपूर्ण मनुष्य है, एक अकस्मिक प्राणी है। होमर की राय है कि 'नारी पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए' और शेक्सपियर के शब्दों में 'नारी कमज़ोरी का दूसरा नाम है।' रूसो के शब्द हैं -'संसार से अपरिचित होने में ही नारी की इज़्ज़त है, पति को सम्मान देने में ही उसका गौरव है और परिवार की खुशी में ही उसकी खुशी है।' नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा 'नारी सन्तान पैदा करने की मशीन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है', और नित्शे महोदय के शब्दों में 'नारी की सृष्टि ईश्वर की दूसरी ग़लती है।' माइकलेट के शब्दों में, 'स्त्री एक आश्रित (Relative) प्राणी है'।

इन कथनों से यह अर्थ निकलता है कि समूची मानवता पुरुष जाति की है। नारी एक स्वतंत्र प्राणी नहीं है। वह सामान्यतया वही है जो पुरुष तय करता है। पुरुष के सामने वह मूलत: एक 'सेक्सुअल' प्राणी के रूप में ही प्रस्तुत होती है। पुरुषों के लिए वह सिर्फ सेक्स है और कुछ नहीं। उसका मूल्यांकन हमेशा पुरुष के परिप्रेक्ष्य में पुरुष के साथ में, पुरुष के साथ रखकर किया गया है।

वह आकास्मिक है, आश्रित है, अपूर्ण है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि पश्चात्य समाज में भी नारी को लगभग उसी दृष्टि से देखा गया है जिस दृष्टि से भारतीय समाज में देखा गया है। नारी के किसी भी रूप को स्वतंत्र व्यक्ति रूप से नहीं देखा गया है। नारी के सभी रूप पुरुष रूपी धुरी के चारों ओर घूमने वाले रूप हैं।

सदियों से समाज में चली आ रही परम्पराओं और रूढ़िवादी मानसिकता के कारण स्त्री किसी भी वर्ग, जाति, समूह की रही हो वह जन्म से ही अपने आपको अबला समझकर पुरुषवादी मानसिकता की शिकार होती रही है। आज समाज में तमाम तरह के बंधनों से जकड़ी महिलाएँ स्वयं की मुक्ति के लिए देश के हर कोने से आवाज़ उठा रही हैं। स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि 'जब तक महिलाएँ स्वयं अपने विकास के लिए आगे नहीं आएँगी तब तक उनका विकास असंभव है।' किसी ने ठीक ही कहा है कि सांस्कृतिक स्तर का यदि पता लगाना है तो पहले देखो वहाँ की स्त्रियों की अवस्था कैसी है। मनु ने भी कहा है– ''यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :।'' अर्थात जहाँ स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है, वहाँ देवता निवास करते है।

इस बदलते समाज में वैदिक काल के बाद स्त्रियों की स्थिति में काफी उतार-चढ़ाव आए है। आज भी स्त्रियाँ अपने अधिकार के लिए सामाजिक रूढ़ियों, परम्पराओं और अपनी अस्मिता के प्रश्न को लेकर जूझती हुई नज़र आ रही हैं। ''स्त्री की स्थिति युगों से ऐसी ही चली आ रही है। उसके चारों ओर संस्कारों का ऐसा क्रूर पहरा है कि उसके अंतरमन जीवन की भावनाओं का परिचय पाना ही कठिन हो जाता है। वह किस सीमा तक मानवी है और उस स्थिति में उसके क्या अधिकार रह सकते हैं, यह भी वह तब सोचती है जब उसका हृदय बहुत अधिक आहत हो चुकता है।'' ऐसा नहीं है कि हमारे भारतीय समाज में स्त्री की स्वतंत्रता, उसकी आज़ादी के लिए प्रयास नहीं किया गया। वैदिक काल के बाद अठारहवीं शताब्दी में स्त्रियों की हालत जितनी खराब थी उसमें 19 वीं सदी में कुछ सुधार आया। धार्मिक आडम्बर रूढ़िगत विचार, परंपरागत सामाजिक संस्कार सभी ने मिलकर अंधकार का ऐसा परिवेश भारतीय जीवन के चारों तरफ निर्मित कर दिया था कि उसे तोड़ सकना सहज संभव नहीं था।

ऐसी स्थिति में स्त्री शोषण के विरुद्ध उसके अधिकारों के लिए समाज में तमाम तरह के सामाजिक व राजनैतिक आंदोलनों की शुरुआत हुई, जिसमें स्त्री-अस्मिता के प्रश्न का एक मुद्दा ज्वलंत रहा। स्त्री से जुड़े शोषण के विरुद्ध राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले आदि महान समाज सुधारकों ने आवाज़ उठाई और स्त्रियों को सभी तरह की सामाजिक रूढ़ियों, बन्धनों से मुक्ति और उन्हें उनका हक दिलाने का प्रयास किया। लेकिन आज भी उनकी समस्याएँ पूर्णत: खत्म नहीं हुई हैं। आख़िर क्यों ? क्योंकि पुरुषों द्वारा नियंत्रित-संचालित ये आन्दोलन आज के स्त्री आन्दोलन से मौलिक भिन्नता रखता है। सबसे बुनियादी फर्क यह है कि पुरुष सुधारक समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे पर हमला नहीं करते थे बल्कि इसे सुरक्षित रखते हुए ही इसके अन्दर कुछ सुधार लाना चाहते थे। पितृसत्तात्मक ढाँचे का मतलब सिर्फ परिवार में पुरुष का मुखिया होना नहीं है बल्कि समाज के सभी पक्षों में आर्थिक, सामाजिक, वैधानिक और धार्मिक व्यवस्था तथा मूल्यों-मर्यादाओं, आदर्शों और चिंतन के रूपों तथा विचारधाराओं आदि में पुरुषों को खासकर प्रधानता देना है। पुरुष सुधारक इस ढाँचे पर सवाल खड़ा किए बिना ही स्त्रियों की दशा में कुछ सुधार लाना चाहते थे। इसी वजह से अब तक स्त्रियों के अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता के लिए समाज और स्त्रियों के अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता के लिए समाज और साहित्य जगत में पुरुषों द्वारा उनकी निजी मानसिकता और स्वार्थ के आधार पर स्त्री-शिक्षा और उनके अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई गई, लेकिन उनकी छवि को अपने अनुसार गढ़ा जाता रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात पुरुषों के समक्ष बराबरी से आने का हौसला नारी में हुआ। नारी मुक्ति की चेतना नवीन संकल्पनाओं के साथ विकसित हुई- पुरातन के साये में नवीनता को अपनाना ही नवीन चेतना के रूप में नारी मुक्ति चेतना बनी।

आज की स्त्रियाँ अपने सफ़र में संघर्ष करने से पीछे नहीं हट रहीं है। खुद की 'पहचान' और अपने 'अस्तित्व' को स्थापित करने की लड़ाई स्त्री व्यक्तित्व को ऐसी उर्जा प्रदान कर रही है कि ''वह नित्य नई ऊँचाईयों को छूती, विकास यात्रा में पूरे मनोयोग से जुड़ी है। उसका यह बदला व्यक्तित्व ज़रूर अचंभित कर रहा है, किन्तु यह सदियों से निरंतर होनेवाली स्वाभाविक परिणति है।'' स्त्रियाँ समाज में अपनी 'पहचान' को स्थापित करने के लिए निरंतर संघर्षशील हुई हैं। आधुनिक भारतीय समाज में नए जीवन-मूल्यों की तलाश करनेवाली स्त्री परिवार के विरुद्ध नहीं बल्कि वह समाज में शोषण और अन्याय के विरुद्ध है। जिसकी वजह से इन्हें हमेशा झुकाया जाता रहा है। महादेवी वर्मा के शब्दों में कहें तो आज की स्त्रियाँ कहती हैं कि ''हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय; न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वह स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है परन्तु जिनके बिना हम समाज की उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।''

'स्त्री अस्मिता' या उसके अधिकार का प्रश्न केवल नारी का प्रश्न नहीं है बल्कि सम्पूर्ण मानवता का प्रश्न है जिस पर सभी को विचार करने की ज़रूरत है। समाज में जब स्त्री अपने अधिकार या स्वतंत्रता की माँग करती है तो उसका मतलब यह नहीं होता कि वह परिवार या समाज से अलग रहना चाहती है। पुरुष से अलग रहकर संसार बसाने की बात नारी नहीं करती, समाज को भी स्त्री को अपनी मुट्ठी में कैद करने की ललक से आज़ाद होना चाहिए। जब तक समाज स्त्री के प्रति सहज नहीं होगा, उसके अस्तित्व को नहीं समझेगा तब तक स्त्री मुक्ति या कहें कि स्त्री-अस्मिता का प्रश्न अधूरा ही रहेगा। अगर इंसानी बराबरी और स्त्री-अस्मिता के प्रश्न को उठाते हुए महिलाओंकी स्थिति में सुधार लाना हो तो उसकी नैतिकता को भी अस्मिता से जोड़ना होगा।

❐❐❐

ईमेल : tondaretrishila03@gmail.com

डायरी

नग्गर – रोरिख़ और प्रणव का नगर

पल्लवी त्रिवेदी

नग्गर – हिमाचल की वादियों में मनाली के नज़दीक व्यास नदी के किनारे बसा एक छोटा सा पहाड़ी क़स्बा जो लगभग डेढ़ हज़ार सालों तक कुल्लू राजाओं की राजधानी रहा और जिसका सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि इस पर उन पर्यटकों की नज़र अब तक नहीं पड़ी है, जो सिर्फ शोर मचाने, गंदगी फैलाने, फेमस जगहों की लिस्ट लेकर एक दिन में दस साईट सीइंग करने और फ़ोटो खिंचाने आते हैं। जिनके लिए पर्यटन के मायने सिर्फ गर्मियों की छुट्टियों में सपरिवार पहाड़ पर जाना है और फेसबुक पर अपनी फोटो अपलोड करना है। मनाली अकेली इन सभी टूरिस्टों का बोझ उठा लेती है और अपने आसपास के सुंदर पहाड़ों को अनछुआ छोड़ देती है, उन सैलानियों के लिए जिन्हें पहाड़ों से मुहब्बत है। इसी मुहब्बत में गिरफ़्तार हम तीन सालों में दूसरी बार जा पहुँचे थे नग्गर।

हिमाचल के शिमला से लेकर कुल्लू और मनाली और मनाली से लेकर नग्गर तक ये सारे वही रास्ते थे, वही जगहें थीं जहाँ मैं 2015 में जून के महीने में जा चुकी थी। तीन साल पहले गर्मियों में हिमाचल घूमते हुए सबसे बड़ा सबक लिया था कि अब कभी भी टूरिस्ट सीज़न में घूमने नहीं जाना है। यही मनाली जो इस बार बाहें फैलाकर हमें अपने चप्पे-चप्पे से वाकिफ़ करवा रही थी, उस वक़्त पर्यटकों से अटी पड़ी थी, पाँव रखने तक की जगह नहीं थी और यहीं हमने एक पूरी शाम ट्रैफिक जाम में फँसे हुए गुज़ारी थी। कुल्लू, शिमला, धर्मशाला, डलहौजी, खजियार, मक्लियोद्गंज हर जगह सिर्फ और सिर्फ भीड़। यहाँ तक कि रोहतांग पर भी भीड़, खाने पीने के पैकेट और पंजाबी गीतों के शोर शराबे ने पहाड़ों का सारा मज़ा ख़राब कर दिया था। जिन्हें भी पहाड़ों से इश्क़ है, उनका दिल रो उठता है ऐसी दुर्दशा पर। इसलिए इस बार जब ठेठ बारिश के मौसम में एकदम ऑफ सीज़न में घूम रहे हैं, तो लग रहा है जैसे पहाड़ों की साँस वापस आ गई है। कसौली, शिमला, मनाली घूमते हुए हम एक बार फिर नग्गर के रास्ते पर थे।

नग्गर जाने की तीन वजहें थीं। एक तो वहाँ की होममेड बेकरी का चीज़ केक खाना, रोरिख़ हाउस में दुबारा जाना, और इसकी ख़ामोश फ़िज़ाँ में ख़ामोश बैठकर घाटी की सुन्दरता को घूँट-घूँट अपने हलक में उतारना और तीसरी और सबसे ख़ूबसूरत वजह प्रणव से मिलना।

यूरोपियन स्टाइल में बनी यहाँ की दुकानों के बीच एक छोटी सी बेकरी शॉप है जिसे पहले दो हेंडसम नौजवान चलाते थे। वही सामान बनाते थे और वही बेचते थे। यहाँ हमने तीन साल पहले अपने जीवन का सबसे स्वादिष्ट चीज़ केक खाया था जिस पर एप्रिकौट सॉस की टॉपिंग थी। ज़ुबाँ से वह स्वाद कभी गया ही नहीं। सो इस बार भी सबसे पहले उसी बेकरी पर धावा बोला। इस बार पहले से थोड़ी बड़ी थी बेकरी और इंटीरियर भी पहले से अलग और खूबसूरत। दो तीन तरह के केक ट्राय किए और कुछ कुकीज़ सफ़र के लिए रख लीं। इसके बाद कूच किया रोरिख़ हाउस की तरफ।

निकोलाई रोरिख़, महान रूसी चित्रकार और यायावर जिन्होंने सारे हिमालय में घूम-घूमकर उसकी सुन्दरता और जीवन शैली को अपने चित्रों में उतारा। रोरिख़ हाउस को अब म्यूजियम में बदल दिया गया है। उनके घर में घूमते हुए एक अद्भुत आनन्द का एहसास होता है। घर के चारों ओर बालकनी है जिससे चारों तरफ के पहाड़ और घाटी देखी जा सकती है। ऐसी जगह रहते हुए चित्रों में एक आध्यात्मिकता और दर्शन अपने आप उभर आते हैं। हिमाचल, उत्तरांचल, कश्मीर, लेह, तिब्बत के पहाड़, वहाँ का पहाड़ी जीवन, पहाड़ी स्त्री, पुरुष, बच्चे, भेड़ें, कुत्ते, धर्म, संस्कृति, पहनावा सब कुछ रोरिख़ की पेंटिंग्स में इस तरह दिखाई देते हैं जैसे ये पेंटिंग न होकर हिमालयन जीवन की जीवंत झाँकी हों। हलके नीले, हरे, जामुनी, पीले पेस्टल शेड्स में बनी हुई हिमालय की तस्वीरें एकदम सपनीली सी लगती हैं, इन चित्रों के रंग चटक नहीं हैं, मुझे इन्हें देख पर्बतों की ठंडक का एहसास होता है। इन तस्वीरों को देखते मन नहीं भरता। इसी घर के एक कमरे में रोरिख़ का बनाया देविका रानी का ख़ूबसूरत चित्र लगा हुआ है, जो दो कलाकारों के सह-जीवन की एक अमिट स्मृति है।

यहाँ की हवा में भी एक ख़ुशबू है इस कलाकार की कला की। उनके कमरे में लगे हुए कैनवास को देखकर लगता है मानों अभी वे आएँगे और कलर पैलेट में कूची डुबोकर पेंट करना शुरू कर देंगे। पहाड़ की चोटी पर बने म्यूज़ियम में चुपचाप बैठकर उस वक़्त को महसूस करना मेरे लिए एक ऐसा अनुभव होता है जिसे ठीक- ठीक शब्द नहीं दिए जा सकते। बारिश में पहाड़ कुछ ऐसे दिखाई देते हैं जैसे बूढ़ा हिमालय अपने कंधों पर बादलों को सवारी करा रहा हो।

पल-पल में मौसम बदलता है पहाड़ों पर। साफ़ दिखाई देते हरे पर्वत कब बादलों के पीछे अदृश्य हो जाते हैं, पता भी नहीं चलता। कभी अचानक से कोई काला बादल शोख़ी से इठलाता हुआ ठंडी फुहार से भिगोते हुए गुज़र जाता है तो कभी कुहासा बन सारी घाटी को अपने आग़ोश में ले लेता है। इस बार रोरिख़ हाउस और म्यूजियम में ज़्यादा वक़्त बिताया। कुछ चित्र भी खरीद लिए आते-आते।

और तीसरी वजह थी प्रणव से मिलना। ना ना ..यह कोई ऐसी कहानी नहीं कि कोई घुमक्कड़ लड़की तीन साल पहले प्रणव नाम के किसी पहाड़ी नौजवान से मिली, आँखें चार कीं, कुछ गाने गाए और पुरानी हिंदी फिल्मों की तरह लौटकर आने का वादा करके चली आई हो और फिर उसे ढूँढ़ती उन्हीं गीतों को दर्द भरी धुन में गाते हुए नग्गर में ढूँढ़ने पहुँच गई हो।

वैसे यह प्रेमकहानी ज़रूर है लेकिन इस प्रीत की डोर जुड़ी है एक दो साल के पहाड़ी बच्चे के साथ। प्रणव वही दो साल का बच्चा था। सोचिए ..एक नन्हा बच्चा प्रणव, नग्गर आने की सबसे बड़ी वजह था और इसके मिलने की कोई संभावना भी दूर-दूर तक नहीं थी। तीन साल पहले जब यह बच्चा कुल दो साल का था तब यह हमें नग्गर की पार्किंग में इसकी माँ के साथ मिला था। तब इसके पापा पार्किंग के ठेकेदार के यहाँ काम करते थे। उस वक़्त भी यह इतना शरारती और प्यार करने वाला था कि गले से झूल-झूल जाता था। इसके साथ हम सब बहनों ने खूब मस्ती की थी और ढेर सारे फ़ोटो खींचे थे। फिर उसके पापा का एड्रेस ले कर वादा किया था फ़ोटो भेजने का। मगर बीच सफ़र में पता तो कहीं गुम हो गया लेकिन प्रणव ज़ेहन से नहीं गया। उसके बाद अगले बरस एक दोस्त हिमाचल घूमने गए तो उन्हें फ़ोटो देकर कहा कि प्रणव से मिलकर आना और उसका ताज़ा फ़ोटो लेकर आना मगर उन मित्र ने बताया कि प्रणव के पिता अब पार्किंग में काम नहीं करते और किसी को उनका पता नहीं है।

इस बार भी पार्किंग पर गाड़ी खड़ी करके सबसे पहले प्रणव के बारे में पूछा मगर नाउम्मीदी हाथ लगी। किसी को उसके व उसके परिवार के बारे में कुछ पता नहीं था और मायूस-से हम नग्गर कैसल देखने के बाद रोरिख़ हाउस चले गए थे।

रोरिख़ हाउस से पैदल-पैदल लौटते समय ढलान वाली सड़क से उतरते हुए एक करिश्मा हुआ। एक छोटा बच्चा उछलता-कूदता मोबाइल कानों पर लगाए सड़क पर जा रहा था। करीब पाँच बरस के सेब से गालों वाले उस शरारती बच्चे की तस्वीर उतारने मैं रुक गई। मुझे तस्वीर लेते देख वह सामने एक दुकान की छत पर चढ़ गया। मैंने हँसते हुए पूछा कि क्या उसका कोई प्रणव नाम का दोस्त है, तो उसने कोई जवाब नहीं दिया। हम आगे बढ़ने लगे ..इतने में समीप के चाय और मैगी के ठेले पर खड़ी उसकी माँ आई और बोली 'यही तो प्रणव है'

'क्या .. ये प्रणव है'

हमारा मुँह ख़ुशी और आश्चर्य के मारे खुला का खुला रह गया। उसकी माँ को

देखा तो याद आ गया उनका चेहरा भी।

ओह .. प्रणव से मिलने की आस जैसे टूट ही गई थी लेकिन यह हमारी गहरी इच्छा थी उससे मिलने की इसलिए शायद किस्मत ने उसे खुद-ब-खुद हमारे सामने लाकर खड़ा कर दिया। फिर तो प्रणव को बुलाया, गोद में लिया और पप्पियों से उसका सारा चेहरा भर दिया। अब यह बच्चा पाँच साल का महा शैतान और नटखट बालक था। करीब एक घंटे प्रणव और उसकी माँ के साथ बिताया। इस बार मेरा मोबाइल खींचकर हमारे फ़ोटो लेने वाला प्रणव ही था। कितने ही ऐसे लोग होते हैं जो बिलकुल अजनबी होते हैं लेकिन उनसे मिलकर लगता है कि जैसे जाने कितने जन्मों से जानते हैं। प्रणव से कुछ ऐसा ही नाता बन गया है। ख़ालिस और बेशर्त मुहब्बत का। हमारे सोलमेट पृथ्वी पर हर जगह मौजूद हैं। न केवल इंसानों की बल्कि जानवरों और परिंदों की शक्ल में भी। यह बात मैंने बार-बार महसूस की है !

ऐसी घटनाओं से हमारे चाहने की ताक़त और क़िस्मत पर यक़ीन थोड़ा और बढ़ जाता है। दोपहर लगभग चार बजे प्रणव से मिलने के बाद हम नग्गर से पार्वती घाटी की ओर जा रहे थे। पूर्ण संतुष्ट, पूर्ण खुश और भरोसे की एक नई टैग लाइन के साथ कि

'अगर शिद्दत से चाहो तो प्रणव भी मिल जाता है'

❑❑❑

एफ़ 6/17, चार इमली, भोपाल
मप्र, 462001
ईमेल : trivedipallavi2k@gmail.com

फ़िल्म समीक्षा के बहाने

मुल्क, संजू

वीरेन्द्र जैन

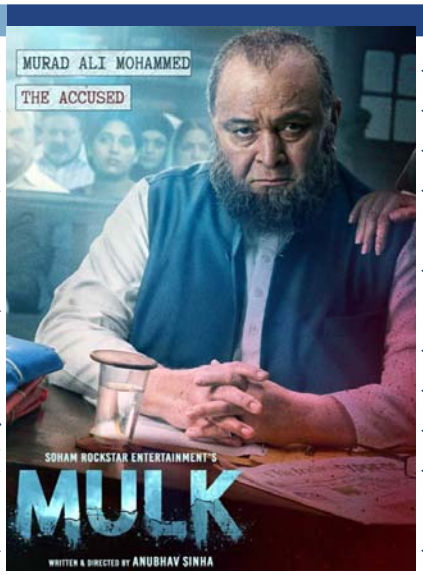

अनुभव सिन्हा की यह फ़िल्म पिछले दिनों आई फ़िल्म 'पिंक' की श्रेणी में रखी जा सकती है जिसमें अदालती बहस के माध्यम से किसी विषय पर रोशनी डालने का तरीका अपनाया जाता है। बहरहाल यह फ़िल्म किसी सच्ची घटना के आस पास से गुज़रते हुए बनाई गई है। फ़िल्म की शूटिंग बनारस और लखनऊ में की गई।

विभाजन के समय मुसलमानों के सामने दो विकल्प थे कि या तो वे पाकिस्तान चले जाएँ जो इस्लाम के नाम पर बनाया गया देश था, या वे धर्मनिरपेक्ष देश भारत में रहें जिसमें सभी धर्मों के मानने वालों के लिए समान नागरिक अधिकार देने का पूरी संविधान सभा ने एकमत से समर्थन किया था व इसे संविधान की भूमिका में व्यक्त भी किया गया है। संविधान में तो यह अधिकार दे दिया गया और इसके भरोसे पाकिस्तान की आबादी से अधिक मुसलमानों ने भारत में ही बने रहने की घोषणा करके भाईचारे में अपना विश्वास व्यक्त किया। मुसलमानों ने तो यह विश्वास व्यक्त कर दिया किंतु जिन गैरमुस्लिमों को पाकिस्तान के हिस्से में आई जगहों में साम्प्रदायिक दंगों के बीच अपने मकान, ज़मीन, दुकान और व्यापार छोड़ कर आना पड़ा उनके मन में मुसलमानों के प्रति एक नफ़रत पैदा हो गई थी जिसे वे न केवल पाले रहे अपितु उन्होंने देश के अन्य ग़ैर मुस्लिमों के बीच भी फैलाने का काम किया। विभाजन के समय जहाँ-जहाँ दंगे हुए वहाँ-वहाँ बहुत सारे लोगों को अपने मूल धर्म की रक्षा का ख़्याल आ गया था। पाकिस्तान में चले गए हिस्से से लुट पिट कर आए लोगों ने दंगों के कारण साम्प्रदायिक हो गए लोगों के साथ मिल कर उस राजनीति को समर्थन देना प्रारम्भ कर दिया जो गाँधी, नेहरू, पटेल, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, की धर्म निरपेक्ष नीति का विरोध करके अपना राजनीतिक आधार बनाने में लगे थे। चूँकि गाँधी नेहरू आदि द्वारा अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ छेड़े गए स्वतंत्रता संग्राम की यादें ताज़ा थीं इसलिए उनको सत्ता पाने में सफलता मिलती गई, पर समानांतर रूप से एक दक्षिणपंथी संगठन मज़बूत होता रहा। 1962 में चीन के साथ हुए सीमा विवाद के कारण उन्हें देश के वामपंथी आन्दोलन को बदनाम करने का अवसर मिला और उनके द्वारा खाली हुई जगह को साम्प्रदायिकता से जीवन पा रहे दक्षिणपंथी दल भरते गए। दूसरी ओर उनके इस फैलाव से आतंकित मुसलमानों ने ग़ैरराजनीतिक आधार पर आँख मूँद सत्तारूढ़ दल को समर्थन करना शुरू दिया जिससे उन्हें बैठे ठाले समर्थन मिलने लगा। यही कारण रहा कि उन्होंने भी साम्प्रदायिक दलों को एक सीमा तक फैलने दिया। बाद में तो राजनीतिक लाभ के लिए अनेक कोणों से साम्प्रदायिकता और जातिवाद को बढ़ावा दिया जाने लगा। विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कारणों से एक मिले जुले समाज में अविश्वास पनपता रहा। विदेश से समर्थित या विदेश के नाम पर बम विस्फोटों जैसी आतंकी घटनाएँ भी घटने लगीं। सत्ता के इशारे पर कमज़ोर पुलिस व्यवस्था जन असंतोष को दूर करने के लिए किन्हीं भी मुसलमानों को आरोपी बनाती रही व साम्प्रदायिकता से प्रभावित सामान्य लोग भरोसा करते रहे। आरोपी बाद में भले ही अदालत से छूट जाते हों किंतु तात्कालिक रूप से मामला ठंडा हो जाता व एक वर्ग विशेष के प्रति नफ़रत पनप जाती। उत्तर प्रदेश में कार्यरत एक संस्था रिहाई मंच के पास ऐसी ढेरों कहानियाँ हैं जिनमें बेकसूर लोग सुस्त न्याय व्यवस्था के कारण इसी तरह वर्षों से जेल भुगत रहे हैं।

फिल्म 'मुल्क' भी 'गरम हवा' और 'साजिद' आदि फ़िल्मों की तरह घुट और पिस रहे मुसलमानों की आवाज़ उठाने की कोशिश है। सबसे पहले इसके नाम को लें। भारत में जन्मी भाषा उर्दू को मुसलमानों की भाषा मान लिया गया है क्योंकि यह पर्सियन लिपि में लिखी जाती है व इसमें अनेक अरबी शब्द लिए गए हैं। हिन्दी में यह जो 'देश' है वह हिन्दुओं के लिए है और मुसलमानों के लिए 'मुल्क' हो गया है। वातावरण में वह विष घुल गया है कि एक समुदाय में देश कहने पर जो भाव पैदा होते हैं वे मुल्क कहने पर नहीं होते। यह फिल्म अनुभव सिन्हा ने बनाई है और इसमें ऋषि कपूर, तापसी पुन्नू, आशुतोष राणा, नीना गुप्ता, मनोज पाहवा, रजत कपूर, प्राची शाह, वर्तिका सिंह, कुमुद मिश्रा आदि ने अधिकांश मुस्लिम पात्रों का सफल व भावप्रवण अभिनय किया है, पर इनमें कोई भी मुस्लिम नहीं है।

कहानी यह है कि बनारस जैसी जगह में मिली जुली आबादी में एक मुस्लिम संयुक्त परिवार रहता है जिनमें बड़ा भाई वकील है और छोटा भाई मोबाइल के उपकरण सिम आदि की दुकान चलाता है। एक और भाई इंग्लेंड में रहता है जिसने एक हिन्दू लड़की से शादी की है जो वकील है। मुहल्ले में आपसी भाई चारा है। छोटे भाई विलाल का एक नौजवान लड़का कश्मीर की बाढ़ के समय

चन्दा एकत्रित करने और उसे एक संस्था को सौंपने के दौरान एक आतंकी सरगना के प्रभाव में आ जाता है, व इलाहाबाद की एक बस में विस्फोट कर देता है जिसमें दर्जनों लोग मारे जाते हैं। वह लड़का एनकाउंटर में मार दिया जाता है और परिवार के सभी निर्दोष सदस्यों को आतंकवादी गतिविधियों में लिप्त मान कर घेरा जाता है और पहले छोटे भाई (मनोज पाहवा) और फिर बड़े भाई (ऋषि कपूर) पर मुकदमा चलाया जाता है। इस अपमानजनक स्थिति से दिल का मरीज छोटा भाई चल बसता है और नर्वस हो चुका बड़ा भाई अपनी बहू (तापसी पुन्नू) से उस के मुकदमे को लड़ने के लिए कहते हैं। फिल्म का उद्देश्य सरकारी वकील द्वारा आरोप सिद्ध करने के लिए बनाई गई साम्प्रदायिक कहानी और उसकी काट के लिए दिए तर्कों द्वारा प्रस्तुत सन्देश से पूरा होता है।

कहानी बताती है कि बेरोज़गारी के कारण किस तरह से नौजवान साम्प्रदायिक गिरोहों के शिकार होकर किस्म-किस्म के आतंकवादी बन रहे हैं। अविश्वास के कारण किसी भटकाए गए मुसलमान युवा के द्वारा किए गए काम की ज़िम्मेवारी पूरे समुदाय पर लाद दी जाती है, और उनकी राष्ट्रभक्ति पर सवाल उठाए जाते हैं। साम्प्रदायिक संगठन किस तरह से अवसर का लाभ उठाते हैं और क्षणों में मुहल्ले के सद्भाव का वातावरण अविश्वास में बदल दिया जाता है। यह फ़िल्म एक ऐसे ज़रूरी पाठ की तरह है जिसे इन दिनों हर नौजवान को पढाया ही जाना चाहिए। एक उद्देश्यपरक फ़िल्म बनाते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह दर्शक उस तक पहुँचें जिनको उसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। इसी प्रचार के लिए अनेक निर्माता तो विवाद तक प्रायोजित करने लगे हैं। बहरहाल ख़बर यह है पाकिस्तान में इस फिल्म पर प्रतिबंध लगा दिया गया है।

संजू - गाँधी दर्शन और पारिवारिक प्रेम पर एक फिल्म

फ़िल्म एक बड़ी लागत का व्यवसाय है और व्यवसाय मुनाफे के लिए किया जाता है, इसलिए फ़िल्म की सफलता को उसके टिकिट खिड़की की सफलता से मापा जाता है। अब वे दिन नहीं रहे जब किसी एक टॉकीज़ में लगातार 25 सप्ताह तक चलने वाली फ़िल्म को सिल्वर जुबली फ़िल्म कहा जाता था। अब उसका मापदण्ड पहले और दूसरे हफ्ते में सौ दो सौ करोड़ की टिकिट बिक्री से होने लगा है। यही कारण है कि फ़िल्मों की विषय वस्तु को उस तरह से प्रचारित किया जाता है जो जनरुचि को छू सके, भले ही कथानक कुछ और बोलता हो।

देश के प्रतिष्ठित लेखक सम्पादक स्व. राजेन्द्र यादव ने एक सम्पादकीय में लिखा था कि अब कहानी से ज़्यादा संस्मरण और आत्मकथाएँ लोकप्रिय हो रही हैं क्योंकि वे जीवंत कहानियाँ होती हैं, इसलिए विश्वसनीय होती हैं। अब हम सब कुछ लाइव देखना चाहते हैं, चाहे क्रिकेट का मैच हो या किसी नेता की चुनावी रैली हो। संजू फिल्म को भी संजय दत्त की आत्मकथा या कहें कि अब तक की जीवन गाथा कह कर प्रचारित किया गया है। इस फिल्म में संजय दत्त के जीवन की चर्चित घटनाओं को आधार बनाया गया है जिसमें उसके ड्रग एडिक्ट होने से लेकर ए के 47 रखने तक की रोमांचक घटनाएँ पिरोई गई हैं। फिल्मों के नायक नायिकाओं से सम्बन्धित समाचार लगभग सारे समाचार पत्रों के फिल्म से संबंधित स्तम्भ में प्रकाशित होते रहते हैं जिनमें सच और झूठ का अनुपात तय करना मुश्किल होता है क्योंकि वे बराबरी की होड़ करते रहते हैं।

संजू फिल्म संजय दत्त की जीवनी से ली गई जीवन कथा के रूप में बनाई गई बताई गई है, किंतु इसमें उनके जीवन की केवल एक दो घटनाओं का विस्तार भर है। इस फिल्म के लोकप्रिय होने के पीछे वह सच्चा प्यार, त्याग और समर्पण है जो इस परिवार के सदस्यों के बीच दिखता है। दत्त परिवार का पूरा जीवन ही घटनाओं से भरा हुआ है। फिल्म मदर इंडिया की शूटिंग करते समय सैट पर आग लग गई थी और सुनील दत्त ने अपनी जान पर खेल कर नरगिस को बचाया था व उनका यही साहस नरगिस के समर्पण का आधार बना जबकि उस दौर की इस सुन्दरतम नायिका से बहुत सारे प्रसिद्ध कलाकार शादी करना चाहते थे जिनमें कहा जाता है कि राजकपूर जैसे चोटी के अभिनेता भी थे। इस विवाह में उस दौर के नामी गिरामी माफ़िया सरदार हाज़ी मस्तान बाधा बन कर उभरे थे किंतु प्रगतिशील शायर साहिर लुधियानवी की मध्यस्थता और सुनील दत्त की गाँधीवादी निर्भीकता व सच्चाई से प्रभावित हुए थे और सहयोगी बन गए थे। हिन्दू मुस्लिम विवाह से उन्होंने देश के उस आदर्श को प्रमाणित किया जो हमारे संविधान निर्मताओं के मन में था। सच तो यह है कि संजय दत्त को ''लगे रहो मुन्ना भाई'' के लिए प्रेरित करने वाले सुनील दत्त का जीवन स्वयं में गाँधीवाद का जीवंत उदाहरण था। उन्होंने अहिंसा के सहारे बिना किसी भय के सत्य के मार्ग पर चलना शुरू किया और उससे कभी नहीं डिगे। नरगिस से प्रेम करने के बाद वे किसी से नफ़रत नहीं कर सके। देश से प्रेम किया और काँग्रेस में रहते हुए बेहद सादगी से लोकसभा का चुनाव लड़ा व जनता के प्रेम से विजयी हुए। बाबरी मस्जिद टूटने के बाद देश में साम्प्रदायिक हिंसा की जो लहर उठी उसमें साम्प्रदायिकता से लाभ उठाने वाले कुटिल लोगों के ख़िलाफ़ भी उनका कोई कटु बयान देखने में नहीं आया। संजू फ़िल्म की पृष्ठभूमि में ही उनका पीड़ित परिवारों को राशन पहुँचाना था जो एक वर्ग के साम्प्रदायिकों को पसन्द नहीं आ रहा था। वे जान से मारने की धमकी से लेकर फ़ोन पर उनकी लड़कियों के बलात्कार तक की धमकियाँ दे रहे थे और उसी भय की अवस्था में संजय दत्त ने घर में हथियार रखने की सलाह को मान लिया था। यह सुनील दत्त ही थे जिन्होंने साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए मुम्बई से अमृतसर तक की पद यात्रा की थी और अपनी फिल्मी कलाकार की लोकप्रियता को साबुन तेल के विज्ञापनों में बर्बाद करने की जगह सद्भाव के लिए इस्तेमाल किया था। जैसा कि फ़िल्म में दिखाया गया है कि उन्होंने हिन्दुओं के बाहुबली साम्प्रदायिक नेता द्वारा संजय दत्त को विसर्जन समारोह में आमंत्रित किये जाने से विनम्रता पूर्वक मना करवाया था और निर्भय होकर हिंसा पर अहिंसा की विजय का उदाहरण प्रस्तुत किया था।

यह फिल्म लगे रहो मुन्नाभाई के बाद इस परिवार की दूसरी गाँधीवादी फिल्म है। इसमें सत्य, अहिंसा, निर्भीकता, सादगी, कमज़ोर की सहायता ही नहीं सत्याग्रह और

सविनय अवज्ञा भी है। इस तरह यह गाँधीवादी दर्शन को आगे बढ़ाती हुई राजनीतिक फिल्म भी है।

सुनील दत्त नरगिस से प्रेम करते हैं और नरगिस सुनील दत्त से। दोनों मिल कर अपने बच्चों से प्यार करते हैं। वे देश से प्यार करते हैं। धर्मनिरपेक्षता को जीते हैं और उसकी रक्षा के लिए निर्भय होकर जान की बाज़ी लगा दे रहे हैं। ज़्यादा प्रेम, और आज़ादी में कुसंगति से बेटा बिगड़ कर एडिक्ट हो जाता है किंतु बेटे को प्रेम करने वाला पिता अपने प्रेम के बल पर ही उसे इस बुरी आदत से बाहर निकालने में सफल होता है। सब कुछ जानते हुए भी संजू की पत्नी उसकी सफाई देश के सामने लाने के लिए उसकी जीवन कथा लिखवाती है और पूरे समर्पित भाव से उसकी जेल यात्रा के दौरान घर सँभालती है। रिश्तों के अलावा एक दोस्त का प्रेम है जो उसको दुष्चक्र से बाहर निकालने के लिए निरंतर लगा हुआ है। इसी प्रेम और समर्पण के देख कर बार-बार दर्शकों की आँखें और दिल भर आता है, और इस तरह वह दर्शकों को संवेदनशील बनाने में सफल है। संजय दत्त की जीवन गाथा में से फिल्म के लिए चुनिन्दा हिस्से ही लिए गए हैं किंतु वे प्रभावी हैं। फिल्म को बायोपिक कहना सही नहीं होगा।

फिल्म में एक गम्भीर आलोचनात्मक टिप्पणी मीडिया के व्यवहार पर भी है जो अपना अख़बार बेचने के लिए हर ख़बर को सनसनीखेज़ बनाना चाहता है और अपने बचाव के लिए एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा देते हैं। किंतु पाठक उस प्रश्नवाचक चिह्न को न समझ कर उसे सच मान लेते हैं। यह अभी भी हो रहा है, समाचार के रूप में अख़बार के मालिकों के हितैषी विचार प्रचारित हो रहे हैं। रणवीर कपूर की पूरे दिल से एक्टिंग की तारीफ के बिना फ़िल्म के बारे बात अधूरी रहती है, वहीं मनीषा कोइराला और परेश रावल ने अपनी-अपनी भूमिकाओं से जान डाल दी है। कहानी के अनुसार फिल्म सफल है।

❑❑❑

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड,
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल [म.प्र.]
462023, मोबाइल: 09425674629
ईमेल : j_virendra@yahoo.com

पुस्तक चर्चा

हत्यारी सदी में जीवन की खोज

समीक्षक : गौतम राजऋषि
लेखक : मुकेश निर्विकार
प्रकाशक : समन्वय प्रकाशन

मैं मुकेश निर्विकार के कविता-संग्रह 'हत्यारी सदी में जीवन की खोज' को आद्योपान्त पढ़कर, गुनकर और पुनः ठहर-ठहर कर पढ़ लेने के पश्चात इस किताब की पहली कविता की बस इस एक पंक्ति-''जीवन यात्रा में वापसी नहीं होती...'' -को लिख कर छोड़ दूँ तो पर्याप्त होगा कवि के कविमन को उकेरने के वास्ते। मुकेश निर्विकार की कविताओं में इत-उत एम्बुश लगा कर बैठी बेचैनी, एक अजब तरह की बेचैनी या यूँ कह लीजिए कि कोई अपरिभाषित सी छटपटाहट कविता की गश्त पर निकले आपके पाठक-मन पर आकर कब अचानक से हमला कर देगी, आपको पता भी नहीं चलेगा और मज़े की बात ये कि ये घात लगा कर किया गया हमला आपको जितना इन्जर्ड करता है, आप उतना ही कविता में और-और उतरते चले जाते हैं। इन कविताओं की तलहट्टियाँ डूबते-उतराते हुए विगत, वर्तमान और आने वाले अदृश्य कल की शंकाओं-आशंकाओं-चिन्ताओं-आश्वासनों के दरमियान टू-एंड-फ्रो करता हुआ मैं थोड़ा सा जैसे खुद के ही मुकाबिल परिपक्व हो गया हूँ। कवि जब कहता है-''ईमान का कछुआ पहुँचा बेशक/सबसे बाद में/लेकिन सिर्फ वही जी सका है/वक्त का तमाम फ़ासला/छलाँग लगाकर पहले पहुँचे खरगोश/अभी भी अनजान हैं रास्तों से''...मैं कवि की सोच संग चहलकदमी करता खरगोश से कछुआ हो जाने की जुगत में जुट जाता हूँ। कवि जब तौलता है रोटी का वज़न और कहता है ''रोटी का वज़न इतना भारी है/कि जुगाड़ में इसके/पूरे तुल गए हैं हम/अपने चरित्रबल के साथ''...मेरी भूख बिला जाती है एकदम से। कवि जब कुलबुलाता है स्वयं में ''क्या अहिंसा पर टिकी/कोई दुनिया नहीं बन पाई तुमसे/हे जगत्-नियंता/मैं नाउम्मीद होना नहीं चाहता/यद्यपि मेरी गर्दन/गिलोटिन पर टिकी है''...मैं सकपका कर अपने बेड के पायों को टटोलने लगता हूँ अपनी गर्दन को अपने हाथों से ढँकते हुए। कवि जब अपने अशांत मन को पुकारता है ''अपने अघाए पेट और तृप्त रसना/के बावजूद/मैं सदा तरसता हूँ/सुकून और शांति के लिए''...मैं अकुला कर प्राणायाम करने बैठ जाता हूँ और कवि की विकलता जब कलपती सी उमड़ती है ''इस युग में रिश्वत न लेना/मेरी अच्छाई नहीं/विकलांगता है''...नहीं, मैं उठ कर नहीं देखता हूँ अपने बटुए की तरफ कि मुझे पता है वो बटुआ कवि की इस 'ना-अच्छाई' से ही संक्रमित है। इकहत्तर कविताओं को समेटे ये किताब कई-कई तरह से विकल करती है...कि उन तमाम विकलताओं को क्रमबद्ध कर पाने की अपनी ही अक्षमता है मेरी! मुकेश एक अपने ही तरह के चुप्पा-से कवि हैं...बिना किसी शोर-शराबे के ख़ामोशी के साथ बस अपने कविता-कर्म में लिप्त रहने वाले। तमाम साहित्यिक पत्रिकाओं में आ चुकी उनकी कविताएँ और ये किताब निश्चित रूप से उनके कवि होने को स्थापित करती है। आख़िर में, यदि मैं इस किताब में शामिल एक कविता ''मालियों पर कब किसी ने लिखे लेखे'' का ज़िक्र न करूँ, तो बेईमानी होगी। मुकेश एकदम से चौंका जाते हैं इस कविता में अपने एक बिल्कुल ही अलहदा से कवि-अवतार में। इस एक कविता के लिए कवि को अलग से करोड़ों दाद। समन्वय प्रकाशन से आई हुई ये किताब अच्छी बाइंडिंग और खूबसूरत छपाई के साथ दो सौ पिचानवे रुपये में उपलब्ध है।

❑❑❑

द्वारा: डॉ. रामेश्वर झा, वी.आई.पी. रोड, पूरब बाजार सहरसा-852201 (बिहार),
फोन- 9759479500 ई-मेल gautamrajrishi@gmail.com

समीक्षा

अस्सी घाट का बाँसुरी वाला

समीक्षक : डॉ. सीमा शर्मा

लेखक : तेजेन्द्र सिंह लूथरा

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

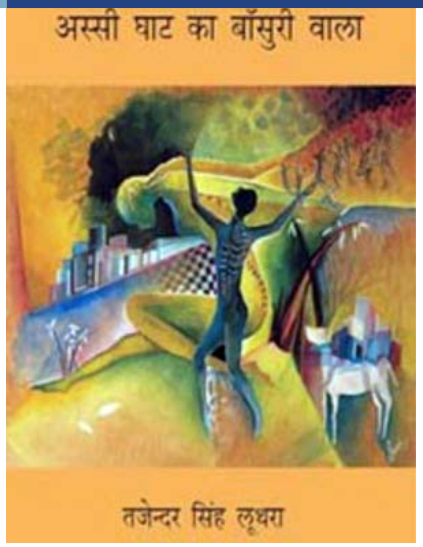

'काव्य संसार के प्रति कवि की भाव प्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं की श्रेय को प्रेय देने की अभिव्यक्ति है।' बाबू गुलाब राय की इस परिभाषा के अनुसार कविता में अनुभूति पक्ष या भाव पक्ष की प्रधानता ही काव्य का मूल आधार है। यद्यपि कला पक्ष की भी इसमें उपेक्षा नहीं है, क्योंकि 'प्रेय' शब्द कला पक्ष की ओर इंगित करता है। तजेन्दर सिंह लूथरा के काव्य संग्रह 'अस्सी घाट का बाँसुरी वाला' में भी भाव पक्ष की प्रधानता है। कवि की भाव प्रधानता उसे स्वार्थ संबंधों के संकुचित घेरे से बाहर उठाती है और शेष सृष्टि से उसका रागात्मक संबंध स्थापित कर देती है जहाँ 'स्व' और 'पर' का भेद समाप्त हो जाता है। कवि के शब्दों में- ''इस बार मैं हूँ/या किसी किरदार का मैं हूँ।''

यदि समीक्ष्य संग्रह की सभी कविताओं को देखें तो प्रतीत होता है कि कवि हृदय में एक तरह की व्याकुलता है। समकालीन सामाजिक स्थितियाँ उसे व्याकुल करती हैं वह अपनी कविताओं के माध्यम से निरंतर प्रश्न करता है और समाधान खोजने का प्रयत्न भी। इसका उदाहरण काव्य-संग्रह की प्रथम व प्रतिनिधि कविता 'अस्सी घाट का बाँसुरी वाला' में भी देखा जा सकता है। प्रस्तुत कविता में एक बाँसुरी बेचने वाले के माध्यम से उस समूचे वर्ग को एक साथ साधा है जो बहुत छोटे-छोटे व्यवसायों के द्वारा स्वयं का व परिवार का पेट पालते हैं। उनके लिए मंदिर में गाई जाने वाली आरती भी ईश्वर से प्रश्न करने का माध्यम बन जाती है- ''यकायक उसने अपनी सारी ताक़त झोंक दी/तान ऊँची कर दी/भाव लरजने लगे/फूँक दिल से निकली/बाँसुरी बजने नहीं बोलने गाने लगी/अब ये साधारण आरती नहीं थी/मजबूरी और शिकायत से उसने फिर गाया ''शरण पड़ूँ मैं किसकी/स्वामी शरण पड़ूँ मैं किसकी?'' इन पंक्तियों में तेजेन्द्र जी ने एक समूचे वर्ग की विवशता को बहुत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में आम जन ने विशेष स्थान पाया है क्योंकि कवि के लिए यह सामान्य जन बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसे अपनी ओर आकर्षित करता है तभी तो 'बक्शीश', 'एक कम महत्त्व वाला आदमी', 'और अब मैं शर्मिंदा हूँ', 'एक साधारण शव यात्रा', 'आकार खोते शब्द', 'बसों से हारना', 'लुहार का डर', 'जो नहीं मरा है', 'ट्रेन में चढ़ गए लोग', (यहाँ कुछ कविताएँ संग्रह से इतर भी ली गई हैं) आदि सभी कविताओं में साधारण मानव अपनी पूर्ण सरलता और जिजीविषा के साथ आता है। कवि को इस वर्ग के दुख, सुख अपने से लगते हैं और उसे यह भी भय है कि कहीं उस वर्ग विशेष के हित में किए गए प्रयास उसी के लिए घातक न सिद्ध हों। इस डर को 'लुहार का डर' कविता में देखा जा सकता है- ''बड़ी मेहनत मशक़्क़त से बनी/एक काली बेशक्ल और कुंद चीज़/जिसे मैंने एक म्यान में डाल दिया/और बड़े-बड़े योद्धाओं के कमरबंद ढीले हो गए/मैं निकला हूँ इससे/पराजय का गला काटने/पर डरता हूँ कि कहीं ये भी/ग़रीब का ही गला न काटे/और सबूत भी न छोड़े।'' प्रस्तुत कविता को उन योजनाओं से जोड़कर भी देखा जा सकता है, जो बनाई तो ग़रीबों के लिए जाती है लेकिन उनका लाभ किसी ओर को ही मिलता है।

'जैसे माँ ठगी गई थी' प्रस्तुत संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कविता है जो दो पीढ़ियों के बीच अन्तराल को बहुत यथार्थपूर्ण ढंग से व्यक्त करती है- ''माँ सोचती थी मैं छोड़ जाऊँगा उसे/लगभग सदा के लिए/माँ शायद ठीक थी/दूरियाँ रिश्ते तो नहीं/पर उनके अनुभव ज़रूर बदल देती है। .....मैंने जितना छोड़ा था माँ को/उतना आज मुझे/जितना माँ नहीं समझ पाई थी मुझे/कुछ उतना मैं आज तुम्हें/जैसे माँ ठीक थी/वैसे मैं आज ठीक (नासमझ) हूँ।'' यह कविता बदलती स्थितियों के साथ बदलते सत्य को बखूबी रूपायित करती है तथा इस कविता की एक पंक्ति ''मैंने जितना छोड़ा था माँ को।'' कितना कुछ समझाते हुए मन में प्रवेश करती जाती है।

इन कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि तेजेन्द्र जी के लिए कविता वैयक्तिक तथा आत्मानुभूति से संचालित प्रक्रिया है जिसे साधारणतया लोग अनुभूत नहीं कर पाते और कवि हृदय चाहकर भी इससे बच नहीं पाता और चर-अचर विषय उसके चिन्तन का कारण बन जाते हैं उदाहरण के रूप में 'शब्द से बातचीत' कविता को देखा जा सकता है जहाँ 'शब्द' की व्यथा भी कवि के लिए चिन्तन का विषय है- हे शब्द, क्या ये इतना सुविधाजनक है/कि तुम नहीं रहते/कभी कुछ और/कभी कुछ और हो जाते हो/पर पीड़ादायक भी तो होगा/इसमें तुम्हारी मर्ज़ी कहाँ हैं?'' एक ओर कवि शब्द के उपयोग को लेकर चिन्तित है तो वहीं दूसरी ओर उसे चिन्ता इस बात की भी है कि जो कुछ वह लिख रहा है और कहना चाहता है उसे समझा तो जाएगा न? तभी तो वह कहता है- ''ढूँढ़ोगे तो सन्दर्भ भी मिल जाएँगे मेरी कविताओं के/निकालोगे अर्थ/तो निकल

आएँगे/मेरे प्रतीकों के/कोशिश करोगे तो पहचान ही लोगे बिम्बो को।''

यहाँ कवि केवल बाहरी दुनिया को ही देखने समझने का प्रयास नहीं करता वह 'स्व' के अस्तित्व को भी खोजता है। 'इस बार मैं हूँ', 'मैं हूँ', 'सारे पुल जलाने के बाद', 'दोनों तरफ', 'मुझे जीने दो', आदि इसी प्रकार की कविताएँ हैं। कवि को अपनी समस्त उपलब्धियों के बाद भी कोई भ्रम नहीं है। उसे इस जगत् के शाश्वत सत्य का केवल ज्ञान ही नहीं बोध भी है। इस संदर्भ में 'मैं हूँ' कविता को देखा जा सकता है- मैं हूँ और मेरे होने का/कुछ भी फर्क नहीं पड़ता है/इस घटनाक्रम पर/मैं जो न होता तो भी/सब चलता रहता यूँ ही/और अब जो मैं होकर/गुज़र जाऊँगा, चलता रहेगा यूँ ही सब कुछ।'' अपने भावों की अभिव्यक्ति एक जटिल कार्य है तेजेन्द्र जी को यह अनुभूति है तभी तो अपनी कविता 'धीरे-धीरे' में वे लिखते हैं- ''शब्द पकड़ा/अर्थ बीत गया/अर्थ जागा तो/शिल्प रीत गया/शिल्प समझा/तो बिंब सूना/बिंब उतरा/तो रस जूठा।''

कवि जब कविता का सृजन करता है तो उसका कोई न कोई प्रयोजन अवश्य होता है। आचार्य मम्मट ने काव्य के छः प्रयोजन बताए हैं- ''काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परिनिवृत्तये कान्ता सम्मित तयोपदेश युजे॥'' अर्थात काव्य के प्रयोजन हैं- यश की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल की शान्ति, आत्म शान्ति व कान्ता सम्मित उपदेश। कवि तेजेन्द्र सिंह लूथरा की जीवन स्थितियों के अनुसार 'आत्मशान्ति' ही उनके लिए काव्य का प्रयोजन हो सकता है और यह उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से परिलक्षित भी होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबन्ध ''कविता क्या है?'' में लिखा है- ''कविता का अन्तिम लक्ष्य जगत में मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उसके साथ मनुष्य हृदय का सामंजस्य स्थापन है।'' इस काव्य-संग्रह के संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन सही प्रतीत होता है।

❒❒❒

एल-235, शास्त्रीनगर, मेरठ (उ.प्र.)
ईमेल : sseema561@gmail.com
मोबाइल: 9457034271

पुस्तक चर्चा

सतरंगी मन

समीक्षक : अरुण लाल

लेखक: शिल्पा शर्मा

प्रकाशक: क्रमिगा कंटेट

कविता मन की सरिता से निकले वह भाव हैं, जिन्हें हम रोक नहीं पाते। कविताएँ ख़ुद तो बहती ही हैं, साथ ही हमें भी बहा ले जातीं हैं। हाल ही में आए शिल्पा शर्मा के कविता संग्रह सतरंगी मन की कविताएँ कुछ ऐसी ही नज़र आती हैं। यह शिल्पा का पहला कविता संग्रह है, जिसमें उन्होंने महानगरीय नारी के नजरिए से जीवन को देखा-समझा और व्यक्त करने का सुंदर प्रयास किया है।

कविताओं की भाषा, कथ्य और प्रवाह सरल और मन को कोमल स्पर्श से भर देने वाला है। नारी, परिवार और समाज के इर्द-गिर्द बुनी गईं ये कविताएँ पाठकों के ज़हन में बहुत-से प्रश्न छोड़ती हैं। यहाँ शिल्पा पाठकों को कटघरे में खड़ा करके उनसे सवाल नहीं करतीं, बल्कि वे खुद कटघरे में खड़ी होकर अपने आप से ही पूछतीं हैं निर्मम सवाल...

बने रहना साझेदार की पंक्तियाँ-

'तुम पुरुष हो/ बस इतना ही काफी है/ तुम्हें कटघरे में/ खड़ा करने के लिए/ किसी भी दूसरे पुरुष द्वारा/ किसी भी महिला के प्रति/ की गई हिंसा का कसूरवार/ तुम्हें भी ठहरा देने के लिए।'

संग्रह की कविताओं में अधूरेपन से कसमसाती एक शहरी कामकाजी नारी नज़र आती है। कहीं वह बेटी है, कहीं माँ है, तो कहीं पत्नी। कई स्थानों पर वह कुछ भी नहीं है। वहाँ वह समझना चाह रही है खुद को..! इन कविताओं में वेदना तो है, पर निराशा कतई नहीं और यही बात है, जो उनकी कविताओं को सुंदर बनाती है।

एक बानगी -- 'हो सकता है/ ये महज/ एक ख़्याल हो मेरा/ पर मुझे चलना होगा/ माँ/ यह तुम्हीं ने तो कहा था/ कोशिशें जारी रखना।'

इस संग्रह की कविताओं में बहुत विविधता है, जो इसे सरस बनाती है, पर कुछ एक कविताओं का शिल्प कहीं-कहीं पकड़ खोता भी लगता है। इस कतिवा संग्रह का प्रस्तुतिकरण बहुत नयापन लिए हुए है। हर कविता से जुड़ी रचना प्रक्रिया पर चंद पंक्तियाँ मौजूद हैं और ले-आउट में मौजूद यह रोचकता कविता संग्रह के नाम के अनुरूप है।

किसी कविता में वे जहाँ प्रेम में डूबी नारी के अपने प्रेमी में घुलकर एक हो जाने की चाहना व्यक्त करती हैं, तो कहीं वे रेलवे स्टेशन पर कुछ बेचते मासूम बच्चों और लाचार बूढ़ों को देखकर भी आगे बढ़ जाने की उसकी मजबूरी को भी उकेरतीं हैं। इन कविताओं में प्रेम का आनंद और जीवन की कटु सच्चाईयाँ एक साथ नज़र आती हैं। कहीं प्रार्थना है तो कहीं पाखंड पर आक्रमण।

जुड़ नहीं पाता मन में वे कहतीं हैं, 'और भी तरीके/हो सकते हैं/ कृष्ण/ युग पुरुष! तुम्हारी स्मृतियों को/ सँजोने के... इसके साथ ही 'मँझौली हैसियत का आदमी', 'क्या यही है परंपरा', 'मेरा स्त्री विमर्श', 'औरों के लिए' और 'उफ ये स्वतंत्रता' जैसी कविताएँ पाठकों और आलोचकों को आकर्षित करते हुए उन्हें सोचने पर मजबूर करती हैं।

❒❒❒

मोबाइल: 9930819020
ईमेल : arunlal.y@gmail.com

समीक्षा

तुम्हारे जाने के बाद

समीक्षक : प्रकाश कान्त

लेखक : कृष्णकान्त निलोसे

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

हिन्दी में प्रेम कविताएँ तो काफी लिखी गयी हैं लेकिन दाम्पत्य प्रेम को लेकर खासकर दिवंगत पत्नी की स्मृति को लेकर अमूमन कम ही लिखी गईं। हालाँकि प्रेम को इस तरह की श्रेणीबद्ध या वर्गीकृत नहीं किया जा सकता फिर भी। बहरहाल, पिछले दिनों देवताले जी की इस तरह की कविताएँ ज़रूर आईं थीं। उसके पहले नरेश सक्सेना ने अपनी दिवंगत पत्नी को लेकर (सुनो चारुशीला) लिखी थीं। वरिष्ठ कवि कृष्णकान्त निलोसे का कविता संग्रह 'तुम्हारे जाने के बाद' इसी तरह का संग्रह है। जो उन्होंने समर्पित भी अपनी दिवंगत जीवन संगिनी को किया है।

निलोसे जी के अभी तक तीन संग्रह आ चुके हैं : ख़ामोशी में झरता है वियोग, दिक में दु:ख, समय, शब्द और मैं! 'तुम्हारे जाने के बाद' उनका ताज़ा संग्रह है। संग्रह की कविताओं के बारे में खुद उन्होंने कहा है कि ये कविताएँ 'मेरी चेतना का स्पन्दन है।' जिनका उद्‌भव 'दु:ख की नाभि' से हुआ है। जो स्मृतियों की संवेदनात्मक माटी में बीज की तरह रच-बस, अंकुरित हो पल्लवित और पुष्पित हुई हैं।

वे इन कविताओं को 'आत्मा के अधरों पर रखी बाँसुरी' मानते हैं जिसके स्वर आनन्द की उस भावस्थिति में ले जाते हैं जहाँ 'मृत्यु का पीड़ा-भाव प्रेम के शाश्वत संसार की रचना करता है।' संग्रह की भूमिका संग्रह की कविताओं की तरह ही उनकी भावनाओं की ईमानदार अभिव्यक्ति है। वे सहज भाव से स्वीकार करते हैं पत्नी इन्दु जो 'प्रिया और जीवन रथ की सारथी' रही उसके जाने के बाद खुद के 'होने' का रीत जाना इन कविताओं में पुनर्जीवित हुआ है। 'इन्दू की स्मृतियों की धूप में बैठ के कविताएँ ऊर्जस्वित हुई हैं और प्रेम की महक की रूह आ उतरी है।' इसीलिए वे इन्हें कविताएँ नहीं सिर्फ स्मृति और अपनी मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर यात्रा मानते हैं। ख़ैर।

इन स्वीकारोक्तियों के अनुसार इन कविताओं में बहुत कुछ है : दाम्पत्य प्रेम, दाम्पत्य जीवन के सुख-दु:ख, साथ जीये क्षणों में चित्र, व्याकुलता, पीछे छूट जाने की पीड़ा, गुज़र जाने के बावजूद न गए होने का आभास-विश्वास, अन्तिम क्षणों के दृश्य, आधी सदी से ज़्यादा का साथ, अपने जन्म दिन की उदासी, एकान्त के सात्विक प्रेमदृश्य, अपना निरर्थक हो जाना कुल मिलाकर अनुपस्थित की उपस्थिति। इस सबके बीच से देह की नश्वरता, मृत्यु, शोक-विषाद इत्यादि के दार्शनिक प्रश्न भी स्वाभाविक रूप से आये हैं। इस दार्शनिकता की ज़मीन भारतीय है। जिसमें फिर से मिलने का सहज विश्वास शामिल है।

'हम-तुम/देह बनकर/मिले ही कब/और/कब देह बनकर हुए अलग/तुम्हारा जाना भी जाना हुआ कहाँ/जब आना ही देह राग भूल गया...'

सारी कविताओं का यही स्थाई स्वर है। 'जीवन के अन्तिम क्षण तक/मैं उनकी आत्मा के समुद्र में/डूबता-उतराता ही रहा/हाँ वह मेरे लिए समुद्र ही रही/अन्तत:'

या 'नींद मुझे आती/लेकिन स्वप्न वह देखती।'

संग्रह की अधिकांश कविताएँ सीधे-सीधे सम्बोधित हैं और एकतरफा संवाद की शक्ल में हैं। खासकर 'तुम ही बता दो', 'सुनो इन्दु', 'तुम्हें वापस पाना चाहता हूँ', 'हे कृष्ण प्रिये' जैसी कविताएँ! संवाद के इस एकालाप में दिवंगत पत्नी-प्रिया की अलग-अलग स्मृतियों-छवियाँ मौजूद हैं। 'मैं कब समझ पाया/तुम्हारी आत्मा में छुपी/छुटपटाहट/उड़ान के लिए' या 'तुम बीता हुआ/कल नहीं/मेरे अनन्त का वर्तमान हो!' इसी के चलते गए हुए से लौट आने का भोला-सा आग्रह भी है। अपने किये-अनकिये का, ठीक का, ठीक से न समझ पाने का, सिर्फ ज़रूरत की तरह लेने का न हल्का-सा पछतावा भी :

'नींद मुझे आती/लेकिन स्वप्न वह देखती' या 'मैं गवाह हूँ/अपनी ही मौत का/यह उसकी नहीं/मेरी ही मृत्यु थी।' या फिर 'जब तक जीवित रही/वह मुझ में जीवित रही/उसके जाने के बाद/अब मैं उसमें जीवित रहना सीख रहा हूँ।'

यह एकालाप आत्म संवाद में भी बदलता है जिसमें वे चरम विषाद के क्षणों में तय करते मिलते हैं, 'मैं उसी अनादि में/ध्यानस्थ होना चाहता हूँ/किसी स्वप्न की प्रतीक्षा में नहीं/हाँ मैं चेतना की सघनता में लौटना चाहता हूँ/जहाँ वह प्रतीक्षा कर रही है/लौट आने की' स्वयं से प्रश्न भी करते हैं कि 'आस्था की ज़मीन पर प्रेम का घरौंदा क्या सिर्फ स्वप्न था?' प्रभु जोशी ने इन्हें 'प्रेम की नहीं, प्रेम के अनोखे आविष्कार की कविताएँ कहा है। जिनमें जीवन में आकर नहीं उसे रच कर चली जाने वाली देवप्रिया-सी स्त्री है।'

इन कविताओं में जिस तरह का दाम्पत्य प्रेम है उसके बारे में स्वयं कवि ने यह माना है कि उस प्रेम के सही अर्थ से परिचय पत्नी

ने ही करवाया 'लेकिन उसे मोड़ पर जहाँ पहुँच वह स्वयं विदेह हो जाती है।' एक बात और यह दाम्पत्य प्रेम आधी सदी से भी ज़्यादा के साहचर्य के कारण पैदा हुआ प्रेम नहीं है। जैसा कि कभी-कभी लम्बे दिनों तक साथ रहते चले आने से एक-दूसरे की आदत हो जाने को भी प्रेम समझ लिया जाता है। इन कविताओं में वह प्रेम नहीं है।

इन कविताओं में संलाप है, आत्मालाप है लेकिन सबसे ख़ास बात कि कहीं भावुक प्रलाप नहीं है। बल्कि एक ख़ास तरह की निर्मल ईमानदारी है। ये कविताएँ प्रेम का नकली तिलस्म नहीं खड़ा करतीं बल्कि निष्कलुष आत्मस्वीकृति के रूप में उसे पूरी सहजता के साथ सामने रखती हैं। यूँ भी सहजता निलोसे जी की कविता की स्वाभाविक पहचान रही है। कविताओं में जो एक अलग तरह की मुखरता दिखाई देती है वह भी इसी सहजता के चलते ही है।

वैसे ये अलग-अलग और संख्यात्मक दृष्टि से इकसठ कविताएँ हैं लेकिन एक तरह से देखें तो लगभग एक ही भाव-भूमि और मनः स्थिति की किसी लंबी असमाप्त कविता के अपने-आप में स्वतन्त्र अंश हैं। एक ही ज़मीन पर लिखी गयीं कविताएँ! दाम्पत्य प्रेम के सर्वथा निजी आघात की उदात्त और अत्यन्त सघन अभिव्यक्ति! इसके लिए उनके पास भाषा का अपना मुहावरा है। एक ख़ास तरह का आत्मपरक मुहावरा!! हालाँकि कविता जहाँ कहीं जीवन, मृत्यु और दीगर दार्शनिक प्रश्नों को छूती है वहाँ भाषा का रंग भी गाढ़ा होने लगता है। और वह कहीं-कहीं सूत्रात्मक होने लगती है :

'आख़िर ब्रह्मा की रात्रि में
दु:ख में ही
एक पुख़्ता घर बनता है
प्रेम का।'

निजी तौर पर इन कविताओं का यह अलग महत्त्व है कि उन्होंने जहाँ कवि को 'विषाद के तप्त कुण्ड से बाहर निकाला, वहीं दूसरी ओर प्रेम के आक्लांत निषाद स्वर का आस्वाद भी कराया है।'

❑❑❑

155, एलआईजी, मुखर्जी नगर,
देवास-455001 (म.प्र.)
मोबाइल: 9407416269

पुस्तक चर्चा

वह मुक़ाम कुछ और

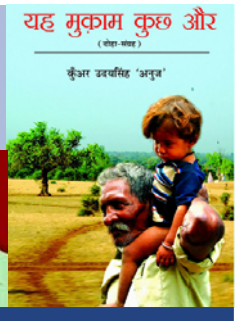

समीक्षक : अशोक 'अंजुम'
लेखक: कुँअर उदय सिंह 'अनुज'
प्रकाशक: सुभद्रा पब्लिशर्स

सशक्त दोहाकार कुँअर उदय सिंह 'अनुज' के दोहों की प्रथम कृति है- 'यह मुक़ाम कुछ और'। पुस्तक के दोहे 35 शीर्षकों में विभाजित है। हिन्दी में तथाकथित दोहाकारों की आज अच्छी-ख़ासी तादाद है। हर साल सूची में कई दोहाकार अपनी नई कृति का नामांकन करा लेते हैं। कई दोहाकार तो कई-कई सतसइयाँ लेकर बैठे हैं। लेकिन कई बार उन सतसइयों के बीच से उद्धरण के लिए कभी एक ढंग का दोहा तलाशने निकलें तो बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। ऐसे में नए दोहे का चेहरा सही मायनों में हमारे सामने रखने वाले दोहाकारों में एक नाम श्री अनुज का भी है। श्री अनुज पिछले कुछ साल से अपने दोहों के साथ अच्छी पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई दे रहे हैं।'यह मुक़ाम कुछ और' श्री अनुज के चुनिन्दा दोहों की पुस्तक है। इन दोहों में बीमार फ़सलें हैं, धूल सना गाँव है, माँ है, पिता हैं, बेटी है, किसान है, ललचाता बाज़ार है, पत्थर जैसे लोग है, और भी जीवन के विविध रंग हैं। कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं :-

मेरे घर बरतन नहीं, हे वचनों के वीर / कैसे रखूँ सँभालकर, यह वादों की खीर

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नेताओं के आश्वासनपरक चरित्र पर तीखा प्रहार किया है। बिल्कुल यूँ जैसे कि कोई डॉक्टर ऐसे मरीज़ को, जिसे कि दो वक़्त की रोटी भी नसीब नहीं है, फल-मेवे खाने की ताक़ीद करता हो।

दंगों की विभीषिका को गाहे-बगाहे अपना देश झेलने के लिए अभिशप्त है। कवि अनुज दंगों के बाद का एक दृश्य हमारे सामने रखते हुए कहते हैं :-

सन्नाटे में है शहर, सड़कें सारी मौन / चला गया है पोतकर, लहू यहाँ पर कौन

आजकल बाबाओं का बाज़ार बहुत गर्म है, शिष्यों-शिष्याओं को माया-मोह से दूर रहने का पाठ पढ़ाने वाले ये तथाकथित साधु-संन्यासी बाबा जब अपने काले कारनामों के साथ नेपथ्य से खुले मंच पर आते हैं और वहाँ जब इनके वैभव के पन्ने खुलते हैं तो आश्चर्य होता है। इस संदर्भ में श्री अनुज का ये दोहा द्रष्टव्य है :-

इच्छा के घोड़े उड़े, लोलुप मन लाचार / छककर पी आठों पहर, पहुँचए हरिद्वार

कमोवेश इसी भावभूमि का शीर्षक दोहा भी देखें :-

भटका अपना कारवाँ, हासिल हुआ न ठौर / जिस मुक़ाम पर आ गए, यह मुक़ाम कुछ और

इधर 'माँ' पर लिखना जैसे फैशन की तरह हो गया है।'वाचिक परम्परा के पहरुए' तो इस विषय को हर कोण से पकड़कर श्रोताओं से दाद पाने के लिए कोई मौका चूकना नहीं चाहते।'माँ' पर केन्द्रित अनुज जी के भी कुछ दोहे इस पुस्तक में हैं। देखें :-

गरमी में ठण्डी हवा, जाड़े मीठी धूप / बारिश में छत-सी तने, माँ के कितने रूप

गोबर लिपटे हाथ से, माँ लीपे घर-बार / लिपा-पुता घर हरा रहा, पा अम्मा का प्यार

गाँवों के बदले चरित्र पर श्री अनुज की विशेष दृष्टि रही है। इसी के साथ एक सचेत, गम्भीर रचनाकार की तरह जीवन-जगत की विसंगतियाँ भी इन दोहों का वर्ण्य-विषय बनकर हमारे सामने आई हैं। कुलमिलाकर अंत में यही कि अच्छे दोहों की अच्छी किताब के लिए श्री अनुज बधाई के पात्र हैं।

❑❑❑

सम्पादक : अभिनय प्रयास (त्रैमासिक), स्ट्रीट-2, चंद्र विहार कालोनी,
(बंगला डालचंद) अलीगढ़-202001, मोबाइल: 09258779744

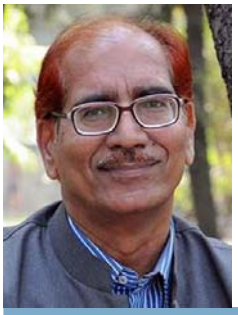

समीक्षा

मदारीपुर जंक्शन

समीक्षक : ओम निश्चल

लेखक : बालेन्दु द्विवेदी

प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

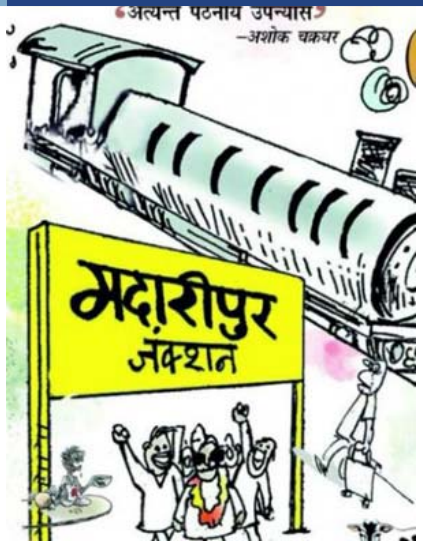

कहते हैं, पुराना चावल पुराना ही होता है। इसी तरह पुराने लेखक। एक से एक दिग्गज। समाज के सुख दुख के भीतर गहरे उतरने वाले। पर नए लेखक भी कम नहीं हैं और इनमें सबके सब नई चाल वाली चालू हिंदी के भी हामी नहीं। जमाना बदला है तो उसे गहराई से आँकने वाले लेखक भी कम नहीं हैं, भाषाई स्थापत्य पर गहरी पकड़ रखने वाले जहाँ क़िस्सागोई की सारी चूड़ियाँ कसी दिखती हैं। कभी 'राग दरबारी' आया था तो लगा कि यह एक अलग-सी दुनिया है। श्रीलाल शुक्ल ने ब्यूरोक्रेसी का हिस्सा होते हुए उसे लिखा और उसके लिए निंदित भी हुए पर जो यथार्थ उनके व्यंग्यविदग्ध विट से निकला, वह आज भी अटूट है; गाँव-देहात के तमाम किरदार आज भी उसी गतानुगतिकता में साँस लेते हुए मिल जाएँगे। तब से कोई सतयुग तो आया नही है बल्कि घोर कलियुग का दौर है । इसलिए न भ्रष्टाचार पर लगाम लगी, न भाई भतीजावाद, न कदाचार पर , न कुर्सी के लिए दूसरों की जान लेने की ज़िद कम हुई। इसलिए आज भी देखिए तो हर जगह 'राग दरबारी' का राग चल रहा है। कहीं द्रुत-कहीं विलंबित । लगभग इसी नक्शेकदम पर चलने का साहस युवा कथाकार बालेन्दु द्विवेदी का उपन्यास 'मदारीपुर जंक्शन' करता है। मदारीपुर जंक्शन जो न गाँव रहा न क़स्बा बन पाया। जहाँ हर तरह के लोग हैं जुआरी, भँगेडी, गँजेड़ी, लंतरानीबाज़, मुतफन्नी, ऐसे-ऐसे नरकट जीव कि सुबह भेंट हो जाए तो किसी को भोजन नसीब न हो।

मदारीपुर पट्टियों में बँटा है। अठन्नी, चवन्नी और भुरकुस आदि पट्टियों में। यहाँ लोगों की आदत है हर अच्छे काम में एक दूसरे की टाँग अड़ाना। लतखोर मिज़ाज और दैहिक शास्त्रार्थ में यहाँ के लोग पारंगत हैं। गाँव है तो पास में ताल भी है जो जुआरियों का अड्डा है। पास ही मंदिर है जहाँ गाँजा क्रांति के उद्भावक पाए जाते हैं। एक बार इस मंदिर के पुजारी भालू बाबा की ढीली लँगोट व नंगई देख कर औरतों ने पनही-औषधि से ऐसा उपचार किया कि फिर वे जीवन की मुख्य धारा में लौट नहीं पाए। याद आए काशीनाथ सिंह रचित 'रेहन पर रग्घू' के ठाकुर साहब जिनका हश्र कुछ ऐसा ही हुआ। हर उपन्यास की एक केंद्रीय समस्या होती है। जैसे हर काव्य का कोई न कोई प्रयोजन । हम सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ की ज़मीन पर 'मैला आँचल' पढ़ चुके हैं, राजकृष्ण मिश्र का 'दारुलसफा' व 'सचिवालय' पढ़ चुके हैं, विभाजन की ज़मीन पर 'आधा गाँव' पढ चुके हैं। गाँव और क़स्बे जहाँ जहाँ सियासत के पाँव पड़े हैं, ग्राम प्रधानी,ब्लाक प्रमुखी और विधायकी के चुनावों के बिगुल बजते ही हिंसा व जोड़ तोड़ शुरू हो जाती है। हर चुनाव में गाँव रक्तरंजित पृष्ठभूमि में बदल जाते हैं। इसलिए कि परधानी में लाखों का बजट है, पैसा है, लूट है। सो मदारीपुर जंक्शन के भी केंद्र में परधानी का चुनाव है। एक कवि ने लिखा है, 'नहर गाँव भर की पानी परधान का।' सो इस गाँव में भी भूतपूर्व प्रधान छेदी बाबू, वर्तमान प्रधान रमई, परधानी का ख़्वाब लिये बैरागी बाबू, उनकी सहायता में लगे वैद जी, दलित वोट काटने में छेदी बाबू के खड़े किये चइता, केवटोले के भगेलूराम, छेदी बाबू के भतीजे बिजई ---सब अपनी अपनी जोड़-तोड़ में होते हैं। ऐसे वक्त गाँव में जो रात रात भर जगहर होती है, दुरभिसंधियाँ चलती हैं, तरह तरह के मसल और कहावतें बाँची जाती हैं वे पूरे गाँव की सामाजिकी के छिन्न-भिन्न होते ताने बाने के रेशे-रेशे उधेड़ती चलती हैं। श्रीलाल शुक्ल ने 'रागदरबारी' में कहा था---यहाँ से भारतीय देहात का महासागर शुरु होता है। यह उसी देहात की बटलोई का एक चावल है।

कभी समाजशास्त्री पी सी जोशी ने कहा था कि 'रागदरबारी' या 'मैला आँचल' जैसे उपन्यासों को समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिहाज से क्यों नहीं पढ़ा जाना चाहिए। आज़ादी के मोहभंग से बहुत सारा लेखन उपजा है। 'राग दरबारी' भी, मैला आँचल भी, विभाजन के हालात पर केंद्रित 'आधा गाँव' में भी गंगोली गाँव कोई मदारीपुर, शिवपालगंज या मेरीगंज से बहुत अलग नहीं है । विमर्शों के लिहाज से देखें तो दलित विमर्श, स्त्री विमर्श दोनों मदारीपुर में नज़र आते हैं। एक सबाल्टर्न विमर्श भी है कि आज भी सवर्ण समाज की दुरभिसंधियाँ आसानी से दलितों को सत्ता नहीं सौंपना चाहतीं, लिहाजा वह उनके वोट किधर जाएँ, कैसे कटें, इसके कुलाबे भिड़ाता रहता है। यहाँ परधानी के चुनाव में बुनियादी तौर से दो दल हैं एक छेदी बाबू का दूसरा बैरागी बाबू का। पर चुनाव के वोटों के समीकरण से दलित वर्ग का चइता भी परधानी का ख़्वाब देखता है और भगेलू भी। पर दोनों छेदी और बैरागी के दाँव के आगे चित हो जाते हैं। चइता को छेदी के भतीजे ने मार डाला तो बेटे पर बदलू शुकुल की लड़की को भगाने के आरोप में

भगेलू को नीचा देखना पड़ा । पर राह के रोड़े चइता व भगेलू के हट जाने पर भी परधानी की राह आसान नहीं। हरिजन टोले के लोग चइता की औरत मेघिया को चुनाव में खड़ा कर देते हैं । दलित चेतना की आँच सुलगने नहीं बल्कि दहकने लगती है जिसे सवर्ण जातियाँ बुझाने की जुगत में रहती हैं।--- और संयोग देखिए कि वह दो वोट से चुनाव जीत जाती है। पर चइता की मौत की ही तरह उसका अंत भी बहुत ही दारुण होता है। लिहाजा जब जीत की घोषणा सुन कर पिछवाड़े पति की समाधि पर पहुँचती है पर जीत कर भी हरिजन टोले के सौभाग्य और स्वाभिमानी पीढ़ी को देखने के लिए ज़िन्दा नहीं रहती। शायद आज का कठोर यथार्थ यही है।

कहना यह कि सत्ता की लड़ाई में दलितों की राह आज भी आसान नहीं। वे आज भी सवर्णों की लड़ाई में यज्ञ का हविष्य ही बन रहे हैं। आज गाँव किस हालात से गुज़र रहे हैं, यह उपन्यास इसका ज़बर्दस्त जायज़ा लेता है। बालेन्दु द्विवेदी गंवई और कस्बाई बोली में पारंगत हैं। गाँव के मुहावरे लोकोक्तियों सबमें उनकी जबर्दस्त पैठ है। चरित्र चित्रण का तो कहना ही क्या। पढ़ते हुए कहीं श्रीलाल शुक्ल याद आते हैं, कहीं ज्ञान चतुर्वेदी तो कहीं परसाई भी । कहावतें तो क्या ही उम्दा हैं :

घर मा भूंजी भाँग नहीं ससुरारी दिहहैं न्योता।

कुल कुक्कुर कासी चल जइहैं तो हड़िया के टकटोरे हो मरदवा।

राजा पिए गाँजा तमाखू खाते चोर। सुरती खालैं चूतिया थूकेले चारो ओर।

बम्हने मा तिवारी / मयभा महतारी/ लाला में पटवारी / हैजा की बीमारी/ कटहर कै तरकारी/ मुकदमा मा फौजदारी/ ऊँट कै सवारी ---इस सबसे दूर रहना चाहिए।

कुल मिला कर दुरभिसंधियों में डूबे गाँवों के रूपक के रुप में मदारीपुर जंक्शन इस अर्थ में याद किया जाने वाला उपन्यास है कि दलित चेतना को आज भी सवर्णवादी प्रवृत्तियों से ही हाँका जा रहा है। सबाल्टर्न और वर्गीय चेतना भी आजादी के तीन थके हुए रंगों की तरह विवर्ण हो रही है। गाँवों को सियासत ने बदला ज़रूर है पर गरीब दलित के आँसुओं की कोई क़ीमत नहीं। बालेन्दु द्विवेदी ने यहाँ लाचार आँसुओं को अपने भाल पर सहेजने की कोशिश बड़ी ही पटु भाषा की है, इसमें संदेह नहीं।

इधर के उपन्यासों में जिस तरह किस्सागोई के तत्व लुप्त हो रहे हैं, मदारीपुर जंक्शन में उस क़िस्सागोई की वापसी हुई है जो प्रेमचंद की परंपरा के उपन्यासों की क़िस्सागोई की याद दिलाती है। उन्होंने कहा कि पिछले दशकों में पंचायत राज के माध्यम से स्वराज और सुराज का जो सपना देखा गया था, उसकी व्याधियाँ आज राजनीतिक दुरभिसंधियों में बदल गयी हैं । इसलिए परधानी का चुनाव जो सर्वसम्मति से पहले हो जाया करता था वह संसदीय चुनावों के दंगल में बदल गया है जिसके पीछे कोटा परमिट व अनुदान पचाने व लूटने की मुहिम है। सो आज कोई भी लोकतांत्रिक चुनाव हो, हिंसा अवश्यम्भावी हो चुकी है। यह आज के वक़्त का रक्तरंजित यथार्थ है। यहाँ भी दलित चइता की मृत्यु आज के दलितवाद के यथार्थ को बेनकाब कर देता है।

पहला उपन्यास होने के बावजूद जिस तत्समता की खुशबू सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास मुझे चाँद चाहिए से आती है, उसी तरह हिंदुस्तानी ज़बान की खुशबू मदारीपुर जंक्शन से आती है। अवधी और भोजपुरी के मुहावरों की छौंक से पूरा उपन्यास मुखरित है। पंचायत राज की पहली सीढ़ी यानी प्रधानी के चुनाव की पृष्ठभूमि आज इतनी पेचीदा हो चुकी है कि चुनाव का बिगुल बजते ही गाँव समरभूमि में बदल जाते हैं। झंडों के परचम लहराने लगते हैं। इस पूरे रंग और मिजाज को बालेन्दु ने इस तरह बयान किया है जैसे वे इसके प्रत्यक्ष गवाह हों। एक रूपक के तौर पर ही सही, मदारीपुर जंक्शन पूर्वी भारत के गाँवों का एक ऐसा प्रातिनिधिक गाँव बन गया है जहाँ चुनावों के दौरान ऐसे ही दृश्य देखने को मिलते हैं। राजनीति ने गाँवों का फैब्रिक नष्ट कर उसे एक अखाड़े में बदल दिया है। आधुनिकता, विकास, लोकतांत्रिकता की आज यही विद्रूप फलश्रुति है।

❐❐❐

जी-1/506 ए, उत्तम नगर
नई दिल्ली-110059,
मोबाइल: 8447289976

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2018

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

समीक्षा
जो घर फूँके आपना

समीक्षक : मलय जैन

लेखक : अरुणेंद्र नाथ वर्मा

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन

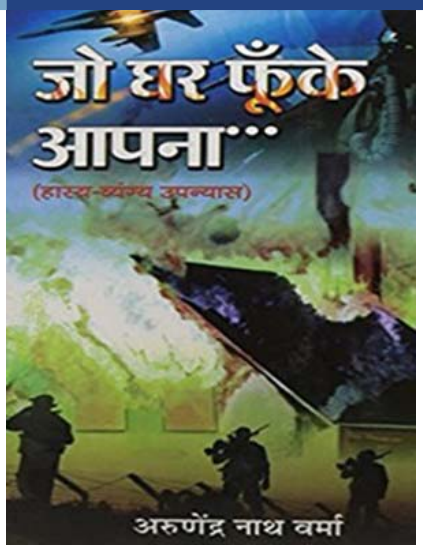

विशिष्ट व्यक्तियों के ऊपर व्यंग्य खूब लिखे गए हैं लेकिन अतिविशिष्ट व्यक्तियों के विमान उड़ाने वाला भारतीय वायु सेना का एक वरिष्ठ अफसर खुले आसमान में अपने जलवे दिखाने के साथ व्यंग्य जैसी कठिन विधा में भी यदि जलवे दिखाएँ तो सुखद आश्चर्य होता है। अरुणेंद्र नाथ वर्मा भारतीय वायु सेना में महामहिम राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक के विमान उड़ाने वाली VVIP स्क्वॉड्रन में रहे हैं और विंग कमांडर के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्त हुए हैं। हाल ही में उनका उपन्यास 'जो घर फूँके आपना' मेरे हाथ लगा। पढ़ा और दंग रह गया मैं। व्यंग्य उपन्यास लिखना एक बहुत कठिन कार्य है, शायद यही वजह है कि व्यंग्य उपन्यास बहुत कम लिखे जा रहे हैं। पूरे उपन्यास में व्यंग्य के तेवर को बनाए रख पाना और उसके साथ पठनीयता को भी बरकरार रख पाना यह थोड़ा मुश्किल कार्य होता है। व्यंग्य में निरंतरता सबसे आवश्यक तत्त्व है।

216 पृष्ठों का यह उपन्यास आपको एक अद्भुत यात्रा की ओर ले जाता है। 1962 के चीनी हमले के बाद हमारे कुँवारे सैनिकों के व्यक्तिगत जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, इसकी कल्पना संभवत: हम में से किसी ने नहीं की होगी। उपन्यास की शुरूआत में ही फ़ौजियों की शादी दुष्कर हो जाने को वह रोचक ढंग से बताते हुए कहते हैं, 'टैक्स डिडक्शन ऐट सोर्स जैसी सूझबूझ दिखाते हुए चीनियों ने भारतीय सेना के ही नहीं बल्कि उनकी आने वाली पीढ़ियों के रास्ते में भी बारूदी सुरंग बिछा दी और चीनी आक्रमण के बाद इस देश की विवाह योग कन्याएँ, उनके माता-पिता और अभिभावक सब बहुत होशियार और चौकन्ने हो गए। भारत चीन युद्ध का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि उसके बाद फौजी कबीर दास लुकाठी हाथ में लिए गुहार लगाते ही रहे पर अपना घर फूँक कर उनके साथ आने के निमंत्रण में ज़रा भी दम नहीं रह गया।'

फ़ौजियों की शादी रोकने में मिग 21 विमान को भी दोषी ठहराते हुए उन्होंने लिखा है, 'उड़न ताबूत के रूप में कुख्यात मिग 21 ने मृत्यु का तोहफा देने के अलावा उसने जितने वायु सेना अधिकारियों की शादियाँ रोकी हैं, शायद लूप, कॉपर टी व माला डी तीनो ने मिलकर उतने बच्चों को जन्म देने से नहीं रोका होगा।'

उपन्यास में वायु सेना में रहते हुए NDA में उनके प्रशिक्षण के वाक़ये ने मुझे पुलिस अकादमी, सागर में अपना प्रशिक्षण याद दिला दिया जहाँ हर बात के लिए हम वरदी बदलने अपनी घुड़साल की ओर भागते और दिन भर में इतनी बार अपनी वरदी बदल लेते थे, जितनी बार ऋषि कपूर ने चाँदनी के एक गाने में अपनी स्वेटरें न बदली होंगीं। NDA में प्रशिक्षण के दौरान दिनभर वर्दियाँ बदल-बदल कर तंग आ चुकने पर वह लिखते हैं, 'खलीफा हारून रशीद की तरह जिन बादशाहों को वेश बदलकर जनता के बीच जाने की ख़ब्त होती थी वे एक बार NDA में भर्ती होते तो हमेशा के लिए उनका यह शौक दूर हो जाता।'

उपन्यास में तमाम ऐसे क़िस्से हैं जो आपको हँसाते हुए लहालोट कर देते हैं। चाहे वह गौहाटी एयर बेस पर पोस्टिंग के दौरान मिसेज़ बरुआ से उनकी कन्याओं को लेकर ग़लत हिन्दी बोल जाने से हुई दुर्घटना हो या रूस के मिंस्क में दुभाषिया के रूप में मिली तन्वंगी लीना से रूसी भाषा में बात करने के अति उत्साह के दौरान घटी हास्यास्पद दुर्घटना, चाहे सालाना छुट्टी के दौरान क़स्बे गाजीपुर में आने पर यों ही टाइम पास टाइपिंग सीखने का वाक़या या गाजीपुर में लड़ाकू विमानों के बारे में गाँव वालों के सवालात, मसलन लड़ाकू विमान में लघुशंका लग आने पर कैसे निपटते होंगे या पैराशूट से कूद जाते होंगे जैसे सवाल।

उपन्यासकार ने अद्भुत भाषा शैली का प्रयोग किया है। यहाँ तक कि अधिकांश मुहावरे उन्होंने अपने पेशे से ही ईज़ाद किए हैं जो सहसा आपका ध्यान खींच लेते हैं, जैसे 'कमांडर साहब की कार आती देख सबके मन फाइटर प्लेन की तरह एरोबिक्स करने लगे', 'तीन विमानों के रखरखाव के लिए संयंत्र लगाना ऐसा ही था जैसे तीन कप चाय के लिए भैंस पालना'।

अपने स्क्वॉड्रन के TU-124 विमान को सर्विसिंग के लिए रूस ले जाए जाने के बारे में वह लिखते हैं, 'वीआईपी के साथ विदेश यात्रा करना बस इतना मजेदार हो सकता था जितना अपने पिताजी के साथ जाकर वयस्क फ़िल्म देखना, वहीं अपने स्क्वॉड्रन के विमान की ओवरहालिंग के लिए रूस ले जाने का आनंद ऐसा था मानों कॉलेज बंक कर रंगीन फ़िल्म देखने जाना।'

वह रूस में अपने प्रवास को और लंबा खींचने के लिए बताते हैं कि रूस में जब सर्विसिंग के बाद उन्हें जहाज़ एयरटेस्ट के लिए सौंपा जाता तो पायलट, कोपायलट, नेविगेटर और फ्लाइट इंजीनियर आदि एयर क्रू बारी-बारी से ख़ामियाँ निकालने में ऐसा

जौहर दिखाते जैसे सीता स्वयंवर में भाग लेने वाले राजकुमार हों।'

इस उपन्यास में उन्होंने विश्व सुंदरियों के चुनाव में भारतीय सुंदरियों के झंडा बुलंद करने पर तंज़ कसते हुए लिखा है कि, 'जैसे ही पता चला कि शरीर के सारे अंगों की नाप तौल हो जाने के बाद चेहरे के ऊपर रखे हुए दिमाग़ का ढक्कन भी खोला जाएगा, उन्होंने अब तक अनदेखी किए हुए शरीर के उस भाग की तरफ भी ध्यान देना शुरू कर दिया जिसे सुंदरियों के मामले में केवल एक खाली डिब्बा समझा जाता था। फटाफट स्नेह, ममता, सेवा, त्याग और तपस्या जैसे शब्दों से उनका परिचय कराने के लिए कोचिंग शुरू कर दी गईं। उनके उत्तर को सुनते ही ज्यूरी पर जूड़ी बुखार चढ़ जाता और वह किसी दक्षिण अमेरिकी या दक्षिण अफ्रीकी सुंदरी की तरफ जाते-जाते मुड़कर भारतीय बाला के सर पर तियारा रख देता है।'

उपन्यास में राष्ट्रपति श्री वी वी गिरी के हैदराबाद प्रवास के दौरान समय पर लेखक के एयरपोर्ट न पहुँच पाने का क़िस्सा जितना लाजवाब है उतना ही हैदराबाद से दिल्ली के रास्ते में पड़ने वाले तूफ़ान, जिसे तकनीकी भाषा में एक्सप्लोसिव डिकोप्रेशन कहते हैं व जिस में विंड स्क्रीन चटकने की स्थिति में अत्यंत भयंकर तूफ़ान की गति से विमान के अंदर की सभी वस्तुएँ सारी खिड़कियों को तोड़ती हुई बाहर उड़ जाने का अंदेशा होता है, पाठक दम साध कर पढ़ता है। शैली ऐसा बाँधे रखती है मानो पाठक खुद कॉकपिट में बैठा है और पायलट यानी लेखक यहाँ भी मज़े लेता हुआ हमारी ड्राइविंग लाइसेंस पद्धति पर व्यंग्य करते हुए आपको सहज करता जा रहा है।

'जो घर फूँके आपना' एक संस्मरणात्मक उपन्यास है और इसका नायक लेखक स्वयं है। जीवनसंगिनी की तलाश में कभी उड़ान भरता तो कभी रेल के जनरल कंपार्टमेंट में खिड़की के रास्ते लड़ाकू विमान की भाँति प्रवेश करता नायक जब गणितज्ञ ज्योति के साथ मिलता है तो अपने अनुभव पर कहता है, 'नूरजहाँ ने भोलेपन से अपने नाज़ुक हाथों में पकड़े कबूतर को उड़ाया था तो जहाँगीर उस पर मर मिटा था, पर गणित और रोमांस की अप्रत्याशित टक्कर से घबराकर मेरे हाथों से जो तोते उड़े तो अभी लौटे नहीं।'

ऐसे तमाम प्रयासों के बाद नायक अंत में जब छाया, रत्ना और शोभा तमाम नायिकाओं के तिलस्म में से एकाएक अपनी मनचाही नायिका को पाने में सफल होता है तो कलाबाजियाँ खाते विमान की खुशनुमा लैंडिंग होते देख पाठकों का मन भी प्रसन्नता के आसमान में उड़ जाता है। वह लिखते हैं, 'किसी विमान चालक से टेक ऑफ और लैंडिंग ये दो ही कर्तव्य सबसे अधिक कौशल की माँग करते हैं।' मगर वास्तव में देखा जाए तो व्यंग्य में उपन्यास के स्तर की उड़ान भरना हो तो कथ्य और भाषा शैली न केवल टेक ऑफ और लैंडिंग, वरन हर अगले क्षण सतर्कता की माँग करते हैं वरना हिचकोले खाने और पाठक के मन से उतर जाने का पूरा ख़तरा होता है और व्यंग्य में तो क्रैश लैंडिंग की सुविधा भी व्यंग्यकार को प्राप्त नहीं है। अरुणेंद्र जी ने इसी अद्भुत कौशल के साथ पूरे उपन्यास को लिखा है।

वह भूमिका में सही लिखते हैं कि 'आप फ़ौजियों के जीवन में खुलने वाली इस खिड़की से अंदर झाँकें, बहुत कुछ अनदेखा पहली बार देखकर आल्हादित हों और उपन्यास के अंत में बेमन से इस खिड़की से हटें तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

वास्तव में भले ही उपन्यास का यह विमान सुखद अंत के साथ हैंगर में जाता है मगर पाठक के मन से हैंगओवर देर तक जाने नहीं पाता और यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि वायु सेना के मोटो 'नभः स्पर्शम प्रदीप्तम्' अर्थात् नभ को छूकर प्रदीप्त कर दो को अरुणेंद्र नाथ वर्मा ने अपने व्यंग्य में भी साकार किया है और अपनी लेखनी से शब्द आकाश को छूकर प्रदीप्त कर दिया है। सच कहा जाए तो शब्दों की यह अनूठी उड़ान विट के कॉकपिट में बैठ, संस्मरणों और क़िस्सागोई की एक सुखद और अद्भुत सुखोई यात्रा सी है।

❐❐❐

के. एच. 50, अयोध्या नगर, भोपाल
(मध्यप्रदेश) 462041
मोबाइल: 9425465140
ईमेल : maloyjain@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अतः कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
shivnasahityiki@gmail.com

समीक्षा

हैश, टैग और मैं

समीक्षक : प्रभाशंकर उपाध्याय

लेखक : अरुण अर्णव खरे

प्रकाशक : कमला प्रकाशन, दिल्ली

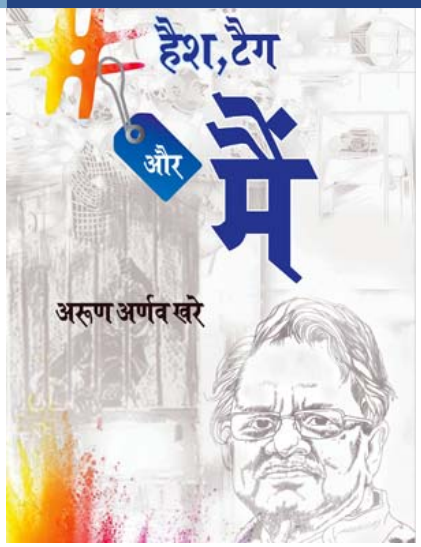

अरुण अर्णव खरे का नाम साहित्य जगत् में सुपरिचित है। उनकी कविताएँ, कहानियाँ और व्यंग्य सतत प्रकाशित होते रहे हैं। 'हैश, टैग और मैं' उनका पहला व्यंग्य संग्रह है। इसमें विविध विषयों पर 41 व्यंग्य हैं।

अरुण जी के इस व्यंग्य संकलन को पढ़ कर यह बात तो साफ हो जाती है कि वे अछूते विषयों को छूते हैं तथा उन्हें एक नई दृष्टि के साथ प्रस्तुत कर देते हैं। वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री रमेश सैनी के अनुसार वे आम बोलचाल के शब्दों को परिवर्तित रूप में व्यंग्य के औज़ार की तरह प्रयोग करते हैं। व्यंग्य जगत के नामचीन समालोचक श्री सुभाष चंदर के मुताबिक अरूण जी के व्यंग्यों में विट के साथ वक्रोक्ति का भी अच्छा प्रयोग है।

वरिष्ठ व्यंग्यकार श्री सुभाष चंदर इस संग्रह की भूमिका में लिखते हैं –'संग्रह ही रचनाओं के केनवास में कई सारे रंग हैं, वे रंग भी जिन पर लिखने में सामान्यत: व्यंग्यकार बचते हैं। विषयों की विविधता इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता है। राजनीति, अर्थ, धर्म, समाज, शिक्षा, मनोरंजन, साहित्य, सोशल मीडिया जैसे अनेक विषयों की विसंगतियाँ उनके व्यंग्य की ज़द में हैं, जिन पर वह पूरे विश्वास के साथ शैलीय उपकरणों के माध्यम से शर संधान करते हैं। दूसरा कारण यह कि उन्होंने इस क्षेत्र में नया होने के बावजूद बनी बनाई लीक से हटकर चलने की कोशिश की है। यह कोशिश विषयों के मामले में भी है और व्यंग्य माध्यम के चुनाव में भी।'

संकलन का पहला व्यंग्य है – 'लाइक दो, लाइक लो'। इस व्यंग्य में अरुण जी ने फेसबुकी मित्रों पर ख़ासा तंज़ कसा है। फेस बुक पर अधिक समय तक सक्रिय रहने वाले लोगों पर वे लिखते हैं कि किसी भी रेडियो एक्टिव पदार्थ से ज़्यादा एक्टिव, धोखे से कभी आपने रात के तीन बजे भी अपना फेसबुक अकाउंट चैक किया तो इन महाशय का हरा बल्ब उस समय भी आपको दमकता हुआ दिख जाएगा। इसी लेख में वे टैग करने वालों के ऊपर चोट करते हुए लिखते हैं कि उनका टैगयापन, अब मुझे उनका काइयाँपन लगने लगा है।

अब, 'मार्च का मौसम बहुत रुलाता है' नामक व्यंग्य में उनकी पंच लाइन देखिए– 'मार्च में नायिका पति के घर आने पर सबसे पहले उसकी जेबें देखा करती थीं। अब उसका लटका हुआ चेहरा देखकर आशंकित हो उठती हैं कि अगला करवा चौथ मना पाएगी कि नहीं। 'नर्क में मुरारी लाल' बहुत अच्छी व्यंग्य कथा है। सपने देखने के आदी मुरारी लाल, स्वप्न में ही नर्क यात्रा पर चल दिए। वहाँ सैर करते हुए वे नर्क के सेलेब्रिटी सेल में जा पहुँचते हैं, जहाँ एक से बढ़ कर एक सेलेब्रिटीज़ दिखाई देते हैं। मुरारी लाल यह सोचकर विस्मित होते हैं कि इन्हें तो स्वर्ग में होना चाहिए फिर ये लोग यहाँ क्यों?

उनकी शंका का समाधान वहाँ मौजूद यमदूत यह कहकर करता है– 'ये सब कपटी, धूर्त और बहुरूपिये हैं। हीरो ने, जिस पर कोड़े पड़ रहे हैं, आठ हीरोइनों का शारीरिक शोषण किया था। बाबा जी को देखो जिसे नंगा कर अंगारों पर लिटाया गया है, समलैंगिक था। नर्क में अनेक तानाशाहों को देखकर, मुरारीलाल फिर प्रश्न करता है, 'यहाँ हिटलर नहीं दिख रहा?'

यमदूत बताता है कि कुछ ही समय पहले उसकी आत्मा के जीवाश्म को उत्तरी कोरिया भेजा गया है और किम जोंग में ट्रांसप्लांट किया गया है। आगे के एक सेल की ओर संकेत करके यमदूत कहता है कि ये देखो, ये आतंकियों का शिविर है....यहाँ चुड़ैलें उनके साथ गलबहियाँ कर रही हैं। वह मुस्तकीम है। सुसाइड बाम्बर था ... दिन रात बड़बड़ाता रहता है कि सालों ने बत्तीस हूरों के चक्कर में बेमौत मरवा दिया।

'नोटबंदी और हलके रैकवार के तीन पत्र', नोटबंदी से प्रभावित लोगों की बेचारगी पर अच्छा व्यंग्य है। 'अच्छे दिनों का अहसास' में ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं – 'बहुत उपकार हैं उनके – उनका दंत मंजन इस्तेमाल करके ही अच्छे दिन भेजने वाले अपने दाँत दिखा पा रहे हैं' -- 'शहरों, गलियों, सड़कों के नाम बदल-बदल कर आपका स्वाभिमान वापस लाया जा रहा है या नहीं --'

'हैश, टैग और मैं' व्यंग्य रचना में अरूण जी की ये पंक्तियाँ देखिए – 'इसी हैश और टैग की कृपा से बापू की हत्या करने वाले गोडसे का अंतिम वक्तव्य सुनने का सुख मेरे कानों ने प्राप्त किया। नेहरू के पूर्वजों का विवरण भी इसी माध्यम पर देखने का मौका मिला।'

'शनि और चोली दामन का साथ' मानवीय संवेदना को उकेरता हुआ बेहद अच्छा व्यंग्य है। चौराहे की रेड लाइट पर, लेखक सन्नी नाम के एक लड़के को कमण्डल में शनि की मूर्ति रखे केवल चार

पहिए वाली गाड़ी की ओर ही लपकते देखता था। एक दिन जब वह दिखाई नहीं दिया तो पता चला कि उसके एक साथी की बहिन को कोई टेम्पो वाला टक्कर मार गया अत: वह हास्पिटल में भर्ती है और सन्नी उसे खून देने अस्पताल पहुँच गया। जब लेखक ने सन्नी से पूछा कि वह शनि का कमण्डल लेकर बड़ी गाड़ियों के पास ही क्यों जाता है, हम जैसे स्कूटर छाप के पास क्यों नहीं। तो सन्नी मुस्कराया – 'बड़ी गाड़ियों वाले शनि से बहुत डरते हैं -- सामने जाते ही झट से पचास का नोट डाल देते हैं। मैं दस स्कूटर वालों के पास जाऊँगा तब भी पचास रुपये नहीं मिलेंगे।' इस व्यंग्य की ये पंक्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं – 'मेरी ऊपरी जेब में अभी भी बीस का नोट पड़ा था लेकिन उसे निकालने की हिम्मत ना जुटा सका। सन्नी तो खाली हाथ होकर भी करोड़ों का स्वामी था। मुझे पता चल चुका था कि शनि उन्हीं को लगता है जिनका दिल बड़ा होता है -- धन्य हो सन्नी।'

'अस्पताल में ज्योतिषी' ज्योतिष के पाखण्ड पर सटीक चोट है। जब महिला ज्योतिषी की लड़की होने की भविष्यवाणी झूठी सिद्ध होती है तो वह उसका दोष डॉक्टर के मत्थे मड़ती हुई सफाई देती है कि डॉ. नेहा रायजादा के हाथों डिलीवरी होती तो लड़की तय थी। चूँकि डॉ. मंजरी सहाय की कुण्डली में ज़बर्दस्त यश-भाव है अत: फूलवती को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इस व्यंग्य को पढ़ कर मुझे एक पुराना वाक़या याद आ गया जब उत्तर प्रदेश में मुख्य मंत्री पद के लिए दो नाम सामने थे – कमलापति त्रिपाठी और हेमवतीनंदन बहुगुणा। एक प्रख्यात ज्योतिषी ने घोषणा की थी कि मुख्यमंत्री तो कमलापति ही बनेंगे लेकिन बन गए बहुगुणा। जब उनसे भविष्यवाणी ग़लत होने के बारे में पूछा गया तो वे बोले – 'मेरी भविष्यवाणी ग़लत नहीं हुई है मुख्यमंत्री तो कमलापति ही बने हैं क्योंकि बहुगुणा जी की पत्नी का नाम कमला है।'

राजनीतिज्ञों द्वारा मौके-बेमौके जुमले उछाले जाते रहे हैं। 'कड़े शब्दों में निंदा' ऐसा ही व्यंग्य है जिसे इस बहु प्रचारित उक्ति को लक्ष्य कर लिखा गया है। इस लघु लेख का पात्र है माखन सिंह। उसके काका के लड़के का सिर दुश्मन ने कलम कर लिया था। वह भावावेश में शहीद को कंधा देने कार्यालय से बिना बताए गाँव चला जाता है तो अफसर उसे निलम्बित कर देता है। जब अफसर को असल वजह पता लगती है तो वह लज्जित होता है और अंदर तक हिल जाता है जब माखन कहता है कि सर आप चाहते तो सरकार की तरह कड़े शब्दों में निंदा कर सकते थे। तब अफसर पूछता है – 'क्या तुम जानते हो ये कड़े शब्द कैसे होते हैं।'

माखन जवाब देता है – 'आप कार्यवाही करते हैं तो आपको पता होगा कि कड़े शब्द कैसे होते हैं। पर जबसे भाई की सर कटी लाश देख कर आया हूँ तो लगता है नपुंसक टाइप के शब्द होंगे।'

'जय फेसबुकिया यारों की' व्यंग्य में पोस्टवीरों पर तंज़ करते हुए अरुण जी लिखते हैं – 'जब बेटियों पर हर तरह की पाबंदी के समर्थकों को साक्षी में जग जीतने वाली जटनी दिखने लगी। कमाल है भाई -- भारत की बेटी बनने से ज़्यादा समुदाय की बेटी बनाना इन सज्जन को अधिक सुविधाजनक लगा।'

'एक भन्नाए सद्य स्मार्ट का खुला पत्र' में एक बुंदेलखंडी ने स्मार्ट फ़ोन क्या ख़रीदा कि वह बेचैन हो उठा क्योंकि गाँव में बिजली अक्सर गोल रहने के कारण वह दस-बारह घंटों तक अपना स्टेटस अपडेट नहीं कर पा रहा था, अत: आज़िज आकर बुंदेलखंडी बंदे ने मुखमंतरी जी को पत्र में लिखा कि – 'कनछेदी ने अपने बाप के मरने पर पल-पल की ख़बर डाली थी – आख़िरी हिचकी से लेकर कपाल किरिया तक का पूरा स्टेटस फोटू सहित। आप बताओ जब हमारे बापू मरहें तो हमाओ मन न हूहे पल-पल को स्टेटस अपडेट करबे को'

'यमलोक में एकदिन' अरुण जी का श्रेष्ठ व्यंग्य है। मुंगेरी लाल की ही तरह चित्र-विचित्र सपने देखने के आदि मुरारी लाल एक दिन यमलोक जा पहुँचते हैं और वहाँ यमदूतों के पारस्परिक संवादों को सुनते हैं। एक उदास बैठे यमदूत का यह संवाद पाठक को झकझोर देता है – 'मत पूछिए दद्दू -- मुझे एक दो नहीं सोलह स्कूली बच्चों की आत्माएँ लानी हैं जो दहशतगर्दों की गोलियों का शिकार होने वाले हैं।'

दूसरा यमदूत – 'ऐसा तो मेरे साथ भी हो चुका है। एक दुधमुँहे बच्चे से उसकी माँ को छीनकर लाने गया था – पर रास्ते में माँ के अनुरोध पर दो मिनट रुक गया -- बस अगले दिन मुझे सीरिया में तैनात कर दिया।'

मानवीय संवेदना के इस व्यंग्य में वे हास्य का छौंक भी लगाते हैं। आत्मा को लेकर छ: मिनट देर से यमलोक पहुँचने पर सस्पेंड हुए यमदूत का ये संवाद देखिए – 'उसमें मेरी कोई ग़लती नहीं थी दादा – हमें जो रूट चार्ट मिला था मैं तो उसी पर चला आ रहा था पर भारत ने उसी समय 104 सेटेलाइट छोड़ दिए -- हमारा भैंसा तक मरते-मरते बचा -- फिर भी मैं आत्मा को सकुशल लेके आया -- मुझे तो विशिष्ट सेवा पदक मिलना चाहिए -- पर मिला सस्पेंशन।' कार्यकुशल नौकरीपेशाओं को हतोत्साहित करने वालों पर यह संवाद चोट करता है।

हँसी का शोधपत्र, भक्तिकाल रिटर्न्स, बापू हम तुम्हें भूले नहीं है, झूठ का स्टॉर्ट अप, महापुरुष का प्रादुर्भाव, पी राधा और मैं संग्रह की अन्य पठनीय रचनाएँ हैं जिनमें व्यंग्य के साथ ही विट और ह्यूमर का अच्छा प्रयोग हुआ है

अब संकलन की कुछ कमज़ोर रचनाओं की चर्चा। 'आँसू बचाइए साहब', 'चाँद का जेण्डर इशू', 'पहली नज़र में प्यार', 'सोनम गुप्ता बेवफा नहीं है', 'एक उजले चेहरे की तलाश', 'जान बची लाखों पाए', 'दिन फिरे ठेंगे के', 'पचासवाँ बसंत और मुरारी की चिंता', 'हाय रे चिट्ठा', 'मुरारी जी का आविष्कार', 'रामराज वाया भड़ास कैफे' आदि इस संग्रह की कमज़ोर रचनाएँ हैं जो व्यंग्य के उद्देश्य को पूरा नहीं करतीं लेकिन इनमें से भी कुछ रचनाओं को पढ़ कर पाठकों को आनंद आएगा। कुछ रचनाओं में विस्तार की गुंजाइश है।

पुस्तक में प्रूफ सम्बंधी भूलें हैं। लगता है प्रूफ संशोधन सावधानी पूर्वक नहीं किया गया है। पुस्तक का आवरण और गेट अप आकर्षक है। कुल मिला कर पुस्तक पठनीय है और पाठक के सम्मुख नई दृष्टि प्रस्तुत करती है।

❑❑❑

193 महाराणा प्रताप कालोनी
सवाई माधोपुर (राजस्थान)
पिन: 322001, मोबाइल: 9414045857

समीक्षा
यायावरी...यादों की

समीक्षक : समीर लाल 'समीर'
लेखक : नीरज गोस्वामी
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

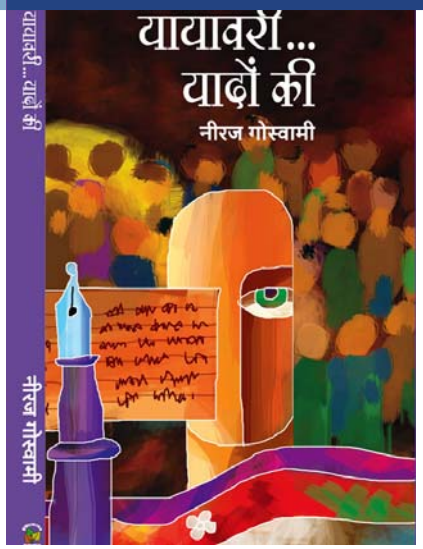

पहला पन्ना खोलिए- समर्पित- उन सभी निठल्लों को जो टाइम पास के नाम पर कुछ भी पढ़ने को तैयार हो जाते हैं। ऐसी अगर कोई किताब आप बुक स्टाल पर देखें तो क्या उसे ख़रीदेंगे?

मगर जब ऐसी किताब एक शायर मिज़ाज, बेहतरीन व्यंग्यकार और उन सबसे ज़्यादा एक उम्दा इन्सान आपको व्यक्तिगत नोट के साथ भेजे, जिस पर लिखा हो - समीर भाई के साथ ब्लॉग दिनों की यादों को..सादर - नीरज।

नीरज गोस्वामी हमारे ब्लॉग मित्र हैं। 2008 में जब इंडी ब्लॉगर और तरकश कमल सम्मान जीतने के बाद हम पहली भारत यात्रा में मुंबई पहुँचे तो भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र (BARC) एक कवि सम्मेलन का संचालन करने का मौका मिला जिसमें नीरज गोस्वामी भी आए हुए थे। तब ही उनको रू-ब-रू सुना और करीब 5 मिनट की मंच के किनारे बातचीत हुई। नीरज भाई को खोपोली लौटना था तो और समय संभव न था। मगर वो पाँच मिनट, ऐसा लगा कि बरसों से जानते हैं और पाँच मिनट में बरसों की बातचीत भी हुई एक दूसरे का हाथ थामे। फिर कई बार फ़ोन पर, ईमेल से, चैट पर बात होती रही। अभी उनके जन्म दिन पर भी फ़ोन से बातचीत हुई कोई हफ्ते भर पहले।

ब्लॉग के संबंध परिवारिक होते हैं, यह कहना अतिश्योक्ति न होगा। वही नीरज जी से हमारे संबंध हैं।

जब इन्होंने किताब भेजी तो उन्होंने ख्वाब में भी न सोचा होगा कि हम इस किताब को पढ़कर इसकी समीक्षा करेंगे। नीरज भाई ने न जाने कितनी ग़ज़ल की किताबों की समीक्षा की है और इतने सधे समीक्षक की किसी किताब की समीक्षा कोई मुझ जैसा करे, ये जिगरा सोच में लाना ही जिगरे की बात है मगर फिर भी कोशिश करने की ठान ही ली।

किताब पढ़ना शुरू की। भूमिका शीर्षक से प्रस्तावना है। अक्सर इसमें लेखक इतना विनम्र होता है कि बिछ-बिछ जाता है, मगर यहाँ तो लेखक ऐसा फैला पसरा है कि निवेदन के बदले धमकी दे रहा है कि कहावत है कि 'जो कुछ नहीं करते वो कमाल करते हैं' जैसे कि आप। जी हाँ आप कमाल ही कर रहे हैं, क्यूँकि आप के पास यकीनन करने को कुछ नहीं होगा तभी तो आपने ना केवल इस किताब पर नज़र डाली बल्कि उसे उठाया, पन्ने पलटे और भूमिका पढ़ना शुरू कर दिया, है न?

लगा कि किस अख्खड़ की किताब उठा ली। पढ़ूँ भी या जाने दूँ। मगर उनकी क्षमता से परिचित हूँ इसलिए उनकी बात न मानी और पढ़ते चले गए। वो धमकाते रहे कि मत पढ़ो..यहाँ कुछ न मिलेगा निठल्लों...मगर हम मानने को राज़ी नहीं। पढ़ते रहे।

समझ नहीं आ रहा था..लग रहा था कि कभी ब्लॉग पोस्ट पढ़ रहे हैं ...खोपोली आओ..तस्वीरें खोपोली की.. झरने.. नदी.. नाले... प्रकृति की अप्रतिम छटा..मुझे भी लगा था कि एक बार इनके पास खोपोली जाना चाहिए..मगर उसे भी इन्होंने व्यंग्य की चाशनी में ऐसा लपेटा कि लगा कि जाते तो भी बीबी क्या कहती..और पहुँच कर हम क्या हासिल करते ..वो इन्होंने अपनी किताब के अध्याय 'आओ चलें खोपोली' में बखूबी बयाँ किया है। किताब कभी एकालाप है, तो कभी डायरी के पन्ने..कभी ब्लॉगर मित्रों से बातचीत ..तो कभी ट्रेवल लॉग तो कभी मुद्दे की बात..नीरज की जुबानी...व्यंग्य बाण हर तरफ से छूट रहे हैं हर हालात में। छोटी छोटी बातों में...विसंगतियों पर ज़बरदस्त प्रहार...आप अहसासोगे कि अरे!! यही तो है हमारा समाज..मगर क्या बखूबी उकेरा है नीरज जी ने इस आम अपनी कहानी में...साधरण सी बयानी में..पेश है कुछ हिस्सों की बयानी किताब से..देखिए कितना मारक है:

आजकल हर त्यौहार पर सोशल मीडिया के बधाई संदेशों की बम बार्डिंग देखते हुए लिखते हैं:

ये चलन हर छोटे मोटे त्योहरों पर भी चल पडा है, कहाँ किसकी क्या कमझाएँ...क्यों अपना भेजा फ्राई करें? आप को एक शेर सुनाते चलते हैं...

''हों जो दो चार शराबी तो तौबा कर लें
क़ौम की क़ौम है डूबी हुई मयखाने में''

आगे कहते हैं:

''क्या करेंगे। इन्सानों की कॉलोनी में रहते-रहते न चाहते हुए भी सीख आ ही जाती है। कभी कभी आत्म चिंतन करके देख लेता हूँ कि इंसानों के ज्याद गुण तो नहीं आ गए अपने अंदर। इंसानों का थोड़ा बहुत गुण चलेगा, लेकिन ज़्यादा नहीं आना चाहिए। आत्म चिन्तन से आश्वस्त हो जाता हूँ तो अपने काम पर लग जाता हूँ।''

फिर अपने ब्लॉग मित्रों को खोपोली बुलाने का सिलसिला।

बुला रहे हैं या आने के धमका रहे हैं या चले आने के निर्णया पर मख़ौल उड़ा रहे हैं..वो तो आप पढ़ कर जानोगे..मगर अपनी हैसीयत का सिक्का जमाते..स्थानीय नेता से बतौर ब्लॉगर ..साहित्यकार मिलने का रोज़नामचा। नेता जी याने कि भाऊ जिनसे कोई उन्हें मिलवा रहा है:

भाऊ, ये ब्लॉगर हैं!

भाऊ ऊँचा सुनते हैं तो पूछने लगे..कि ''कौन हैं? बैग्गर??''

मिलवाने वाले पानी-पानी हुए बताने लगे कि नहीं...बैग्गर नहीं...ब्लॉगर...ये ब्लॉग और फेसबुक पर लिखते हैं...

भाऊ कहने लगे..कि एक ही बात है..बैग्गर और राइटर..एक ही बात है..एक पैसा माँगता है ..एक डिप्पनी...मने कि मँगते तो दोनों ही हैं।

फिर एक के एक बाद...चलो खोपोली..चरण वंदना...और न जाने क्या क्या..छितरा बितरा किताब में..फिर पहुँच गए चीन... ट्रेवल लॉग के नाम पर इससे बेहतरीन नॉन ट्रेवल लॉग आज तक नहीं देखा मैंने कभी। कटाक्ष ऐसे कि तिलमिला जाओ और बात वो जो खुद अहसासी हो हमेशा।

'21 नवंबर की रात एक बज कर बीस मिनट पर जैसे ही मुबई अंतर राष्ट्रीय हवाई अड्डे से कैथे पैसेफिक का विमान रवाना हुआ वैसे ही मेरे साथ यात्रा कर रहे मेरे और दो अधिकारियों के चेहरे पर रौनक आ गई। कारण खोजने में वक़्त नहीं लगा ..उन्होंने खुद ही चहकते हुए कहा 'अब फोकट की दारू मिलेगी सर' दारू मिलेगी यह तो उन्हें पता था मगर कब इसकी फिक्र में दोनों अपनी जगह पर ठीक से बैठ भी नहीं पा रहे थे। फिक्र यह कि अगर कहीं नींद का झौंका आ गया और विमान परिचारिका उन्हें बिना जगाए अगे बढ़ गई तो? यानी चीन यात्रा का पहला मकसद ही पानी में चला जाएगा।'

गज़ब ऑब्ज़र्वेशन है..हम तो खुद गुज़रे हैं इन ख़्यालों से अक्सर!! क्या गज़ब का तीखा आकलन!

फिर चीन में। जैसा कि मैंने कभी अपनी किताब में कहा था कि हम भारतीय भारत में पिज़्ज़, चाईनीज़ खोजते हैं और जैसे ही इटली और चाईना पहुँचते हैं तो भारतीय रेस्टारेन्ट खोजते हैं..वही इन्होंने किया चीन पहुँचते ही:

इन्टरनेट की मदद से भारतीय रेस्टोरेंट खोजे गए, उनका नाम पता चीनी भाषा में लिखवाया गया, फिर से टैक्सी लिए और चल पड़े।

दिल्ली दरबार वास्तव में दूर था लेकिन उस तक जाने का रास्ता निहायत खूबसूरत। चालीस मिनट की इस यात्रा में हमनें शंघाई की रात का नज़ारा किया।

दिल्ली दरबार के बाहर से ही हिंदी गाने ''मुन्नी बदनाम हुई'' सुन कर बाँछे खिल उठीं।

फिर भारत से बाहर भारतीय हर तरफ दिखा...ट्रेन में..उसकी सफाई में, उसकी सर्विस में..उसकी हौसला अफ़जाई में..

फिर लौट आया भारतीय भारत में..मगर रुका नहीं..कभी पुस्तक मेले में तो कभी गोष्ठी में..

'पाँच मिनट के बाद ही सामने बैठे लोगों के सब्र का बाँध टूट गया और उन्होंने हूटिंग शुरू कर दी। लोगों ने उन्हें भाषण बंद कर उनसे उनका ही कलाम सुनाने की फ़रमाइश की जिसे वो हमेशा हर महफ़िल में सुनाते आये हैं। उन्होंने अपना गला खँखारा और एक ग़ज़ल के चार-पाँच शेर सुनाये जिसे लोगों ने उनका साथ देते हुए पूरा किया। हाथ जोड़ वो वहीं से समय की कमी का रटारटाया बहाना बनाते हुए वहाँ से रुख़सत हो गए और उनके साथ ही भीड़ भी इधर-उधर हो गयी। मंच पर खड़े रह गए वो नए उभरते महान होने की तैयारी में जुटे हमारे बिचारे शायर और उनकी विमोचित किताबों पर चढ़े कागज़ के रैपर के रंगीन टुकड़े, किताबें तो लोग पहले ही ले उड़े थे। मैं मुस्कुराता हुआ अगले मनोरंजन स्थल की ओर रवाना हो गया।'

किताब है कि तस्वीरों का केप्शन.. केप्शन हैं कि तस्वीरों पर इतराती किताब..

जान ही ना पाएँगे कि किताब पढ़ी, कि लथाड़े गए कि सराहे गए...

सराहे गए का सूत्र पकड़ कर ..मँगाएँ और पढ़ डालें...फिर बताएँ कि क्या सोचा और तब हम तय कर लेंगे कि इसे क्या कहें!!

❐❐❐

ईमेल : sameer.lal@gmail.com

शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :

Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")

(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)

सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :_____ **डाक का पता :**_____

_____ **सदस्यता शुल्क :**_____ **चैक / ड्राफ़्ट नंबर :**_____

ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :_____ **दिनांक :**_____

(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

समीक्षा

झीरम का अधूरा सच

समीक्षक : अनिल द्विवेदी

लेखक : कुणाल शुक्ला और प्रीति उपाध्याय

प्रकाशक : वैभव प्रकाशन

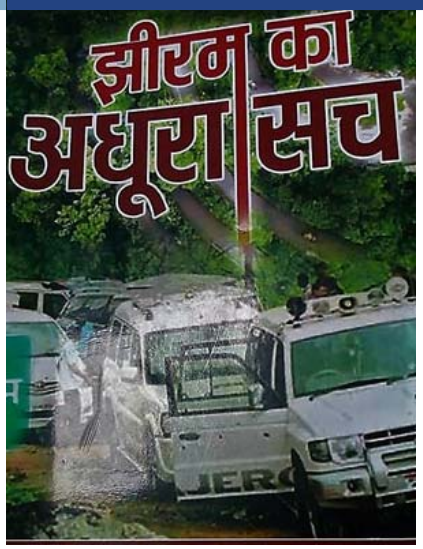

25 मई 2013 की घटना ने विश्व को हिलाकर रख दिया। सर्पीली आकार लिए बस्तर की झीरम घाटी से जब कांग्रेस नेताओं का काफिला गुज़र रहा था तब माओवादियों के एक दल ने दोपहर में अचानक हमला बोला जिसमें 27 लोग शहीद हो गए थे. इनमें कांग्रेस कार्यकर्ता, नेता, सुरक्षाकर्मी, मजदूर और ड्रायवर शामिल हैं। देश के इस सबसे बड़े राजनीतिक नरसंहार पर छत्तीसगढ़ के सामाजिक कार्यकर्ता श्री कुणाल शुक्ला और उनकी धर्मपत्नी, कार्पोरेट अधिकारी श्रीमती प्रीति उपाध्याय ने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम है 'झीरम का अधूरा सच। पुस्तक को समग्रता में पढ़ने पर पता चलता है कि लेखक द्वय ने दरभा घाटी हमले का ना सिर्फ इतिहास खोलकर रख दिया है वरन् न्यायपरक दृष्टिकोण भी पेश किया है। पुस्तक में कुल आठ अध्याय हैं जो पाठक को उस क्रूर समय को जाँचने-परखने, उससे मुठभेड़ करने का हौसला देते हैं।

पूरे घटनाक्रम की गहरी शिनाख़्त प्रस्तुत की गई है। पुस्तक की भाषा और प्रवाह पाठक को बाँधे रखने में सक्षम है। हम इसे नहीं पढ़ते बल्कि यह तो अपने आपको हमसे पढ़वा ले जाता है। लेखकों ने उन स्मृति-संदर्भों को सँजोकर पिरोया है जो शहीद नेताओं के साथ उन्हें हासिल हुए थे। चाहे अपने राजनीतिक गुरू स्व. विद्या भैया पर लिख रहे हों या नंद कुमार पटेल पर, सत्य का धागा वस्तुनिष्ठता को बाँधे हुए आगे बढ़ता है। उन्होंने दिवंगत नेताओं के प्रति यथायोगय सम्मान, सदभाव और प्रीति के साथ-साथ भावानुसार क्षोभ भी प्रकट किया है।

कुणाल शुक्ला एवं प्रीति उपाध्याय के अनुसार : सब जानते हैं कि यह राजनीतिक नरसंहार किस राजनेता के इशारे पर हुआ? पर एक-दूसरे को बचाने में लगे हैं। दरअसल यह असफलता देश के न्यायिक सिस्टम और राजनीतिक नेतृत्व को मुँह चिढ़ाने जैसी है।

पुस्तक की शुरूआत में जिस रोचकता से रहस्मयी पहलुओं को उद्घाटित किया गया है, वह अन्यर्त दुर्लभ है। इस संस्मरण का शिल्प ऐसा है कि शब्द, क्रांति करते दिखते हैं तो कहीं उनमें मौन-मुखर है। कहीं ख़ामोशी बोलती है तो कहीं सन्नाटा सघन हो उठता है। पुस्तक का प्रत्येक अध्याय यथार्थवादी जामे के साथ हमारे सामने आता है। बीबीसी हिंदी की रिपोर्ट का हवाला देते हुए हत्याकाण्ड पर चार अनसुलझे सवाल खड़े किए गए हैं।

पहला सवाल सुरक्षा व्यवस्था में चूक को लेकर है? वे आश्चर्य जताते हैं कि मुख्यमंत्री की सुरक्षा में 1786 पुलिसकर्मी लगाए गए जबकि चंद दिनों बाद ही कांग्रेस की बड़ी परिवर्तन रैली में कांग्रेस के दिग्गज नेताओं तथा ढाई हज़ार कार्यकर्ताओं के लिए मात्र 218 पुलिसकर्मी ही तैनात किए गए! दूसरा सवाल सत्तारूढ़ पार्टी और माओवादियों के बीच कोई तालमेल को लेकर उठाया गया है। बीबीसी हिंदी की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि इस राजनीतिक हमले में क्या सरकार की कोई भूमिका थी हालाँकि इसका कोई सबूत लेखक नहीं दे सके।

झीरम घाटी हमले की बुनियाद में तीसरा सवाल घटना की जाँच पर उठता है? एनआइए जाँच रिपोर्ट को खामियाँ भरा बताते हुए दावा किया गया कि जाँच में बस्तर एसपी, सुकमा एसपी और बस्तर आईजी को पूछताछ के लिए बुलाया ही नहीं गया! रिपोर्ट में सीबीआई जाँच का ज़िक्र है जबकि दुनिया के सबसे बड़े राजनीतिक नरसंहार की जाँच ना करने का इंकार पहले ही हो चुका था।

अमूमन कोई भी लेखक अपनी विचारधारा या दलीय प्रतिबदधता को प्रगट करने से बच नही पाता लेकिन इस पुस्तक के लेखकों ने निष्पक्ष उदारता का परिचय दिया है। सोशल एक्टिविस्ट कुणाल भाई कुणाल शुक्ला एवं प्रीति उपाध्याय, कांग्रेस पार्टी और उसके नेताओं के ख़ासे समर्थक हैं लेकिन झीरम हमले के मद्देनज़र कांग्रेस पार्टी की चूक को लेकर उन्होंने तल्ख़ टिप्पणी की है। वे एक जगह लिखते हैं : तत्कालीन यूपीए अध्यक्ष सोनिया गाँधी, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और राहुल गाँधी ने छत्तीसगढ़ का दौरा तो किया लेकिन प्रदेश में राष्ट्रपति शासन नहीं लगवा सके।

प्रभाव और प्रवाह को बनाए रखते हुए पुस्तक में अतीत के पृष्ठ यूँ पलटे गए हैं कि सिलसिला बनता चला गया है। पुस्तक की विषय-वस्तु ने पाठक के चित्त को अंत तक बाँधे रखा है। कुल मिलाकर समग्रता में देखें तो कुणाल का यह संस्मरण न तो आत्मस्तुति का शिकार है, न आत्मप्रेक्षण का माध्यम और न ही भड़ास निकालने का उपक्रम. यह उस दायित्व को निभानेभर का सफल प्रयास है जिसमें एक लेखक अपनी कलम से न्याय की नई इबारत लिख डालता है।

❐❐❐

मोबाइल: 9826550374

समीक्षा

विज्ञप्ति भर बारिश

समीक्षक : सवाई सिंह शेखावत

लेखक : ओम नागर

प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर

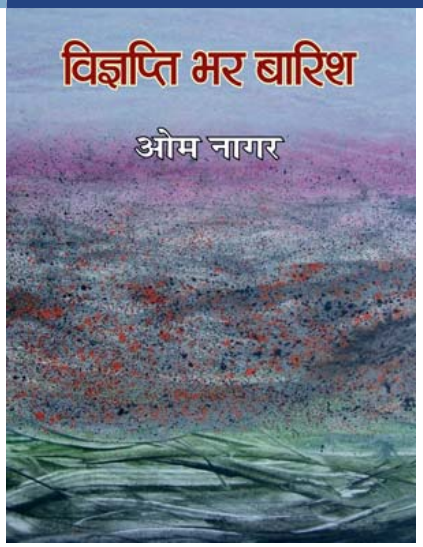

ओम नागर का 'देखना एक दिन' के बाद यह दूसरा काव्य-संग्रह है। इसमें उन्होंने गाँव और क़स्बों के जीवन में फैली बेरोज़गारी, विस्थापन, गडबड़ाता पर्यावरण, पाताल में समाता पानी, छिनती ज़मीनें, सिकुड़ती जोत, तासीर खोती मिट्टी, औंधे मुँह गिरते अनाज के दाम और गाँवों के माहौल को लगातार खराब करती राजनीति की बेचैन छवियाँ दर्ज की हैं।

इन कविताओं में आज के गाँव-क़स्बों के जीवन की यथार्थ तस्वीर के साथ ही उसका व्यापक केनवास भी काबिले-गौर है। यहाँ बैंक के नोड्यूज और खाद के लिए पंक्तिबद्ध किसान, रासायनिक उर्वरकों से पश्त होती खेतों की उर्वरता, लगातार गहराता पानी का संकट किसान का क्या बोएँ क्या ना बोए वाला धर्म-संकट, व्यापारिक फसलें लेने के चक्कर में धरती के पेंदे में बच रहे अमृत को निचोड़ लेने की किसान की आतुरता, बिस्वों में सिकुड़ती जोत, किसानों में बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति, मनरेगा मस्टररोल में नाम तलाशते युवाओं की लम्बी कतारों के साथ ही अब गाँवों में भी धर्म, जाति, आरक्षण और वोट के नाम पर फैलते दंगे हैं। ऐसे में कवि अपनी गहरी चिन्ता का इज़हार करते हुए लिखता है: जितना कठिन लगता है ज़रा से जीवन में/उस कठिनाई भरे रिश्ते को ढूँढ़ना/उससे भी कठिन होता है/ज़रा सी कठिनता से भिड़ना। ओम नागर इस तरह जीवन की ज़रूरी चिन्ताओं के साथ ही, ज़रूरी जीवन-संघर्ष के भी कवि हैं।

इन कविताओ में ओम नागर जीवन को बदतरी की ओर धकेलते कारकों की पड़ताल कर उन्हें लगातार प्रश्नांकित करते चलते हैं। आज और अब के सामाजिक जीवन में दिखावे के बढ़ते ढोंग को लेकर वे लिखते हैं: 'मुखौटों से घिरा हूँ मैं इन दिनों।' उधर कभी हमारी अर्थव्यवस्था का आधार रही कृषि भूमि पर लगातार खड़े हो रहे कंकरीट के जंगलों को उन्होंने 'ज़मीन और जमनालाल' कविता में बहुत गहरे से रेखांकित किया है।

ओछे राजनीतिक हथकण्डों के चलते हमारा सामाजिक ताना-बाना जिस तरह इन दिनो छिन्न-भिन्न हुआ है और लोगों के दिलों के फ़ासले बढ़े है ऐसे में उन्हे पिछली बेहतर बातों का स्मरण आना स्वाभाविक हैं। जब हज का शवाब और पीली कनेर की मालाएँ गाँव के सामाजिक माहौल को समरस बनाती थी, जिसके चलते हमारी सामाजिक सौहार्द्रता पूरी तरह सुरक्षित थी। जब पूजा और परवीन की टाटपट्टियों के बीच किसी किस्म का कोई विभाजन नहीं था। इसीलिए शहर से गाँव लौटते हुए उन्हें गाँव का सहजीवन, हथाई, खेल-तमाशे, भूले-बिसरे भजन, मंजीरों की ताल, ठिठोली और मसखरियाँ याद आते हैं। नहीं, यह अतीत का गदलश्रु भावुकता भरा स्मरण या महिमा-मण्डन नहीं है, बल्कि गाँव -क़स्बों के सामाजिक जीवन की संवदेना को गहराने वाले स्रोतों की फिर से तलाश है।

जीवन की इसी तरफ़दारी में उन्हें सूरज से आँख चुरा कर पंखुड़ी में समा जाती ओस की बूँद, जीवन के ऊबड़-खाबड़ को समरस बनाती मिलन की अपनी सी राह, अपने हिस्से का प्रेम, पलकों की कोर में बँधी स्मृतियों की मिठास के साथ ही गाँवों की सड़कों के किनारे गन्ने पेर कर उसके रस का रोजगार करती 'रसवालियाँ' भी याद आती है। जो कृत्रिम पेयों के विरुद्ध जैसे एक सार्थक लड़ाई लड़ रही है और इस तरह जीवन की देसी मिठास को बचाने का एक महत्त्वपूर्ण उपक्रम कर रही है।

कविताओं में ओम नागर जीवनानुभवों को तवज्जो देने के पक्षधर हैं। इसीलिए उनके यहाँ आज भी 'काला अक्षर भैंस बराबर' रहे पिता शब्द बीज बोते हैं और वर्णमाला काटते हैं। कवि कहता है: बारहखड़ी आज भी खड़ी है/हाथ बाँधे पिता के समक्ष। जीवन को तरह देती ज़रूरी कोमलता को हलकान होते देख 'गिद्धों की चाँदी के दिन' कविता में वे लिखते हैं तहखानों में कोई शैतान बसा लेता है गिद्धों की बस्ती और चुन-चुन कर खाता है आँख, नाक, कान/गुलाब की पंखुड़ियों से होंठ/दिल की धड़कन को अनसुनी कर नोंच लेते हैं/कलाइयों पर गुदे हो हरे जोड़ेदार नाम। इसी तरह भूख के अधिनियम में उन्हें भूख से बेकल अपनी ही सन्तानों को निगल चुकी कुतिया के साथ, कफन का घीसू, काल कोठरी से निकल कर आती बूढ़ी काकी के साथ ही भूख का दशक पूरा करती इरोम शर्मिला और माँ के नाराज़ होने से क्षण भर को ठिठकती धरती के साथ ही सैंकड़ों प्रकाश वर्ष नीचे चले गए सूरज की याद आती है। जीवन के प्रति गहरी उद्दाम आत्मीयता के चलते ही ऐसी कविताएँ संभव होती है। निश्चय ही यह संकलन अपनी देशज चिन्ताओं में गहरे से जुड़ा है।

❐❐❐

जयपुर, राजस्थान

समीक्षा
चीड़ के वनों में लगी आग

समीक्षक : आशा खत्री 'लता'
लेखक : आशा शैली
प्रकाशक : साहित्यभूमि प्रकाशन

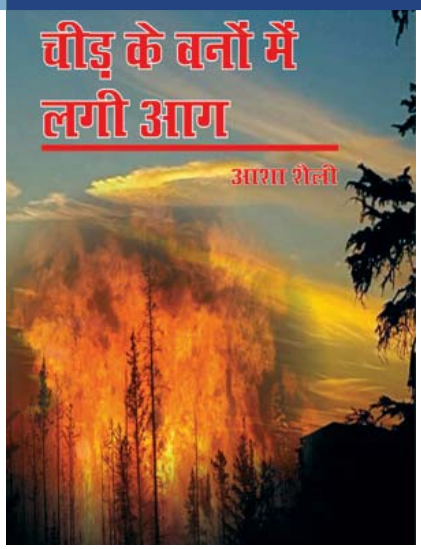

आशा शैली के व्यापक जीवन अनुभव के संस्मरणों से सजी पुस्तक 'चीड़ के वनों में लगी आग' देश की आज़ादी एवं विभाजन से लेकर वर्तमान काल तक को अपने भीतर सँजोए है। प्रस्तुत पुस्तक में 26 संस्मरणों के माध्यम से लेखिका ने अपने जीवन काल की विभिन्न यादों को इस तरह से पिरोया है कि पाठक के लिए पूरे सात दशक की यात्रा तय हो जाती है। आज़ादी से पूर्व उनका जन्म अविभाजित भारत; वर्तमान पाकिस्तान में हुआ था। अपने संस्मरण 'अपना देस' में वे बताती हैं- ''मेरा जन्म 1942 का है और 1945 से ही देश के हालात बदलने लगे थे।'' आज़ादी की भूमिका बनाते देश के तत्कालीन हालात का बहुत साँगोपांग चित्रण उनके संस्मरणों में हुआ है। उन्होंने अपने बचपन में जो देखा, जो जिया वह हम जैसे सामान्य लोगों से अलग है। विभाजन की जिस पीड़ा को देश ने जिया पहले चार संस्मरण पूरी तरह से उन्हीं हालात का बयान करते हैं। उनका परिवार अन्य लोगों से भाग्यशाली रहा कि वे सब हरिद्वार तीर्थ यात्रा के लिए पहले ही रावलपिण्डी से निकल चुके थे और खाली हाथ भी नहीं थे। परन्तु विस्थापन की पीड़ा का जो दर्द होता है वह तो उन्होंने झेला ही और उसकी बहुत ही मार्मिक अभिव्यक्ति संस्मरणों को इतिहास का दस्तावेज़ बना देती है। एक लेखक की क़लम भविष्य की कल्पना के साथ ही भूत में भी वह पानी तलाशती रहती है जिससे पाठक मन की जिज्ञासा रूपी प्यास का शमन होता है। उन्होंने भारतीय इतिहास का वह कड़वा सच अपनी आँखों से देखा है जब भारत विभाजन की घोषणा उनके माता पिता ने सुनी और उसके कुछ ही देर बाद बस में बैठे हुए उन्होंने गाँधी और नेहरू को लोगों के आक्रोश का शिकार होते देखा और लोगों को उन पर पत्थर बरसाते देखा।

विभाजन के समय की स्थिति का एक अंश 'वे अवधूत महात्मा' से देखिए- ''हाँ, तो मैं कह रही थी! झोपड़ी से थोड़ी ही दूरी पर गंगा बह रही थी। मैं, जो असमान खट्टड़ में हर्रो नाले का थोड़ा सा पानी देखकर ही मचल-मचल उठती थी। एक साथ इतना सारा पानी देखकर खुशी से नाचने ही लगी। मेरी माँ ने मुझे ज़ोर से डाँट दिया, ''झल्ली (पागल) हो गई है क्या? चुपचाप बैठ।'' पर बैठें कहाँ? वहाँ पर तो सिवाय सोंधी धरती के बैठने के लिए और कुछ था ही नहीं, कहाँ बैठते? लेखिका के संस्मरणों में पहाड़ी जन-जीवन के संघर्ष एवं कठिनाइयों ग्रामीण लोगों की सहज, सरल मनोवृति आपसी प्रेम भाव का बड़ा ही सजीव वर्णन हुआ है। 'रोमांस या रोमांच' संस्मरण में सफर का एक उदाहरण देखिए- मार्च के अन्तिम दिन थे हरियाली छाने लगी थी, सुर्ख लाल बुरूंश फूल रहे थे, खट्टी-खट्टी महक जंगल में फैली हुई थी। वे वृद्धा बार-बार कर रही थी, लाड़ी (दुल्हिन) ज़रा सम्भलकर चल। पैर फिसल गया तो पता भी नहीं चलेगा कहाँ गई।'' एक संस्मरण में कुछ सैनिकों के कुकृत्यों का भी उल्लेख हुआ है। बेटियों के लिए पढ़ने में आने वाली कठिनाइयों, सरकारी महकमों में कुर्सी पर काबिज़ लोगों के कर्त्तव्य पालन की आड़ में किए जा रहे अनैतिक कार्यों, लेखकों के 'सुपरिचित अहम' बड़े लेखक बनाने के लिए दिए जा रहे प्रलोभनों और उनके लिए सहर्ष मान-सम्मान की 'कीमत' चुकाने को कलम ने बखूबी उजागर किया है। एक काव्य उत्सव में भाग लेने जा रही कवयित्रियों की बातचीत का अंश 'कोल्हापुर' संस्मरण से देखिए- ''वह बड़े नखरे से मुँह बिचका कर बोली, ''उहूँ! मुझे तो कविता बिल्कुल पसन्द नहीं है।'' ''फिर तुम कोल्हापुर क्या करने जा रही हो?'' लेखा भड़क गई। ''सर ने मुझे मेरा डांस देखकर बुलाया है।'' साथ ही साथ लेखकों को बढ़ावा देने वाले और दिल पर छाप छोड़ने वाले अच्छे लेखकों की महानता को भी ससम्मान स्थान दिया है। स्व-महाराजा कृष्ण जैन एवं डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र जैसे वरिष्ठ लेखकों ने उनकी कलम से मान और संस्मरणों में स्थान पाया है। प्रस्तुत संस्मरण इसलिए भी विस्तृत जीवन को अपने भीतर समेटते हैं क्योंकि लेखिका का व्यक्तित्व भ्रमणशील है। एक महिला होते हुए भी यात्रा का ख़तरा वे बखूबी उठा लेती हैं। रावलपिण्डी से कश्मीर तक की यात्रा के उनके यानी तीन वर्ष से लेकर, जबकि स्मृतियाँ बहुत धुँधली हैं, अब तक का कुल मिलाकर साढ़े सात दशक के अनमोल अनुभवों का खजाना उन्होंने बड़ी सहजता, सच्चाई और निष्पक्षता से संस्मरणों की लड़ी में पिरोकर पाठकों तक पहुँचाया है। जीवन के खट्टे मीठे, कड़वे सभी रूपों के साथ मानवीय भावों का सहज चित्रण करते रोचक संस्मरण इसमें सम्मिलित हैं।

❐❐❐

2527, सेक्टर- 1, रोहतक पिनकोड- 124001 हरियाणा।
मोबाइल : 8295951677

समीक्षा

सच, समय और साक्ष्य
थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर'

समीक्षक : डॉ. रामप्रकाश वर्मा, लेखक : शैलेन्द्र शरण

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर

कविता भविष्य के पर्दे के पार देखती है। सर्वकालिक बनती हैं और सर्वकालिक बनाती है। चिरंतनता, अमरता, जीवन के प्रति, मानव के प्रति, जीवों के प्रति विश्वास होती है कविता। यह सुखद है भारत में नेतृत्व के प्रति लोग अपेक्षा रखते हैं, लोग साहित्यकारों की तरफ निहार रहे हैं, मानो कह रहे हों की आप समाज में विशिष्ट हैं।

कुँवर नारायण ने कहा था कि लेखक की नियति अपंक्ति होना है और शैलेन्द्र शरण अपने कविता संग्रह 'सच, समय और साक्ष्य' के साथ अपंक्ति हुए हैं। यह गौरव की बात है कि इस पंक्तिबद्धता को अस्वीकार कर उनका संग्रह विशिष्ट पहचान बनाने में सक्षम है। यह उनका दूसरा कविता संग्रह है।

संग्रह 'सच, समय और साक्ष्य' पहले संग्रह के 22 वर्षों के पश्चात आया है और अनुप्रासिकता लिए हुए है। ये तीनों शब्द आज कविता की ज़िम्मेदारी हैं। विशेष बात तो यह है कि ये तीनों शब्द कविता कि कसौटियाँ हैं। सच कविता की आत्मा है, समय मन है, और साक्ष्य शरीर और तीनों मिलकर काव्य-पुरुष बनते हैं। माना भी जाता है कि कविता अधूरे को पूरापन देती है अर्थात अपूर्णता को पूर्णता। अभिव्यक्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विषय है 'प्रेम'। प्रेम के बारे में वर्षों से कहा जाता रहा है कि वह पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं हो पाया। शैलेन्द्र शरण का काव्य-संग्रह मुख्यत: प्रेम की अभिव्यक्ति है। संग्रह में अनेक ऐसी कविताएँ हैं जिनमें प्रेम एकदम नए-नवेले ढंग से व्यक्त होता है। इन कविताओं में न तो प्रेम के शास्त्रीय शैली है और न परंपरागत परंपरा। 'ऐसी भी होती है यात्रा', 'एक यात्रा के समापन पर', 'जीत जाना इस तरह', 'उन दिनों', 'इस तरफ', 'वो अब भी है', 'बरसात कि पहली बूँद', 'किसी सड़क पर', 'अनजाना रह जाना', 'फिर किसी दिन', 'जाने के बाद', 'इस होली पर', जैसी अनेकों रचनाएँ बिलकुल अलग तरह से प्रेम को अभिव्यक्त करतीं हैं।

इस संग्रह की अतिविशिष्ट बात लक्षणीय यह है कि उनकी कविताओं में प्रेम स्वत: आया सा लगता है, इनमें प्रेम का नैतिक पक्ष रेखांकित किए जाने योग्य है। उनकी कविता की एक और विशेष बात यह है कि प्रत्येक कविता का अंत कुछ इस तरह से होता है कि जिसके बारे में पाठक सोच ही नहीं पाता, एकदम अप्रत्याशित सा मोड़ जो पाठक को गंभीर चिंतन का विषय दे जाता है। एक कविता की अंतिम पंक्तियाँ देखें :

'यह बाज़ार से जाना / चीज़ों के माध्यम से आकार लेता है प्रेम / और तुमसे कि प्रेम एक ही तरीके से व्यक्त करने की चीज़ नहीं।' इस कविता की पंक्तियों में कहीं भी नायिका का वर्णन नहीं है। अंतिम दो पंक्तियों में नायिका-वर्णन काल्पनिक और मानसिक है। यह विशेषता शैलेन्द्र की कई कविताओं में मिलती है। अपनी बात को कितने सीधे तरीके से कहा गया कविता की इन पंक्तियों में। कविता है 'सिवाय तुम्हारे' : 'इधर-उधर से समेटता हूँ / तुम्हारे साथ गुज़रे कुछ पल / नदी का किनारा / लहर सी हँसी / वो डूबता सूरज / अनकही बे-बसी / वो साँची का स्तूप / और बुद्ध सा तुम्हारा मौन'। इस मौन का बुद्ध होना ही कवि और कविता को बड़ा बनाता है।

'एक यात्रा कविता की समापन पंक्तियाँ देखें :' पिछले दिनों मैंने भी की एक यात्रा / घर बैठे-बैठे / सैंकड़ों मील दूर गया तुमसे / सच कहूँ / इस यात्रा में कुछ नहीं पाया मैंने / बस / तुम्हें खोने से बच गया'। और तो और शैलेन्द्र की कवितों में कर्फ़्यू में भी प्रेम है। यह विरोधाभास रेखांकित करने योग्य है। 'शांत हो जाने दो शहर / आँगन का सहमा गुलाब लिए / आऊँगा तुम्हारे घर / दरवाज़े खुले रखना / बनाए रखना जूड़ा'

कवि शैलेन्द्र कर्फ़्यू में बसंत का अहसास कराते कहते हैं 'बसंत ! इस नींद का तुम्हें अहसास कराना चाहता हूँ। उनकी कविताओं में प्रेम सहजता से नई-नई छटाएँ लिए उपस्थित होता है जो कभी-कभी हमें विस्मित सा छोड़ जाता है। होली पर दो कविताओं में यह प्रेम द्रवित भी करता है और मोहित भी। शैलेन्द्र की कविताओं में सहजता से सहज आया यह प्रेम सुखद है।

शैलेन्द्र शरण का यह काव्य-संग्रह कथ्य के साथ-साथ शिल्प में

भी अपनी छाप अंकित करता है। 'परछाई' कविता अत्यंत आत्मिक है। तीन तलाक जैसी आज की चर्चाओं पर भी कविता है तो अन्य सामाजिक विषयों और राजनीति पर भी, जिन्हें अलग से रेखांकित किया जा सकता है। बिम्ब कि दृष्टि से 'आदिवासी लड़की' नामक कविता अत्यंत सुंदर है। पाठक मानों अपने आपको आदिवासी बस्ती के बीच खड़ा पाता है। हसुली, गिलट, करधनी, तोड़े, अचकनी जैसे शब्द लोक जीवन को साकार करते हैं। परंपरागत प्रतीकों को नए परिवेश में ढालना कवि की अपने कला है। कविता संग्रह में 'सच का डर', 'ख़िलाफ़त', 'कसमें- कानून', 'साज़िश', 'समय', 'चलन', 'चालाकी', 'लाचारी', 'बहस' और कुछ ऐसी कविताएँ हैं जो आज के समय के सच को सामने लाती हैं। सामाजिक विषमताओं और विडंबनाओं को उजागर करती हैं और हमारे आज के समय के वाजिब प्रश्न उपस्थित करती हैं। 'सच, समय और साक्ष्य' संग्रह की समीक्षा की जाए और 'चूँकि' कविता का ज़िक्र न हो यह बेमानी है। यह कविता सामयिक तपन के गर्भ से उत्पन्न है। साधारण आदमी विपरीत परिस्थितियों में कैसे जीना सीख लेता या यह इसका उदाहरण है। पंक्तियाँ देखें :चूँकि मेरे पास सच के साक्ष्य थे / कानून में दर्ज उस सज़ा से बच गया / चूँकि मैं साधारण इंसान था / तो इस अरसे में मैंने छिपकर वार करना सीख लिया। 'संग्रह के शीर्षक में आया यह सच, समय और साक्ष्य यहाँ सार्थक हो जाते हैं। आखिर 'अरसा' समय ही तो है। यह संग्रह शिवना प्रकाशन सीहोर से प्रकाशित है। जिस पर बैजनाथ सराफ़ 'वशिष्ठ' द्वारा विविध रंगों से समाविष्ट सुंदर पेंटिंग है। इस संग्रह की भूमिका डॉ. प्रतापराव कदम ने लिखी है।

सुंदर कलेवर से सम्पन्न इस किताब के पृष्ठ भाग पर 'शमशेर सम्मान' प्राप्त वरिष्ठ कवि श्री हरीश चन्द्र पांडे तथा श्री एकांत श्रीवास्तव की टिप्पणियाँ हैं जो इस संग्रह की कविताओं की सच्ची समीक्षा करती दिखाई पड़ती हैं। श्री अजय बोकिल की कुछ पंक्तियाँ भी इसी पृष्ठ भाग पर हैं जो शैलेंद्र की कविताओं पर भरोसा जताते दिखाई पड़ते हैं।

'थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर' शैलेन्द्र शरण का पहला ग़ज़ल संग्रह है जिसमें शिल्प की बड़ी मशक़्क़त है। अधिकांश ग़ज़लें छोटे बहर की हैं। ग़ज़ल विधा में छोटी बहर की ग़ज़ल लिखना बेहद कष्टसाध्य होता है। ग़ज़कार ने इस संग्रह में 'सूरज साथ / मिलाओ हाथ' जैसे 7-8 मात्राओं वाले शेर लिखे हैं। इसी प्रकार 'बहती हुई नदी है / तल का क्या पता' जैसे शेर 11-12 मात्राओं में लिखे गए हैं। यह शैलेन्द्र शरण जीवंत अभिव्यक्ति कौशल है। कम मात्राओं वाले शेर वही लिखते हैं जिनके पास शब्दों का अक्षय भंडार होता है, शब्दों के विकल्प जिनके पास उपलब्ध होते हैं। शैलेन्द्र शरण ने इस शिल्प में हाथ डालने का कार्य किया है जो हिम्मत का कार्य है। शैलेन्द्र शरण के रचना संसार में एक और अनोखी बात देखने को मिलती है कि वे मुक्त छंद में प्रेम की बात करते हैं तो ग़ज़लों में राजनीति और सामयिक समस्याओं की। बानगी देखिए :

इस चुनाव में खूब हुई है शब्दों की तीरंदाज़ी
निज रक्षा में टूटे कितने तीर भी कमानी भी।

सबने पूरा बहुमत देकर चाहे हैं कुछ अच्छे दिन
दृष्टिगत ही हुए हैं अब तक निर्णय भी मनमानी भी।

इस ग़ज़ल संग्रह के पृष्ठ भाग पर श्री गोविंद गुंजन लिखते हैं कि शैलेंद्र शरण की ग़ज़लें बड़े पाठक वर्ग का ध्यान खींचने में सफल हुई हैं। उनकी ये ग़ज़लें जितनी सहज हैं, उतनी ही गहरी भी हैं, ये उस नीली झील के ततरह है, जो ऊपर से शांत दिखाई देती है परंतु उसकी गहराई का पता उसमें उतरकर ही लगता है। उनमें एक गहरी वेदना है, जो हवाओं में बिखरती हैं तो हमारे संवेदन तंत्र को भीतर तक झकझोर जाती हैं।

'आई सबा उधर से तो ये बोलकर गई
हँसते हुए किसी ने काजल भी धो लिए।

यह 'हँसते हुए रोना' और 'काजल का धुल जाना' जैसे अनोखा बिम्ब शैलेंद्र शरण जैसे मंजे हुए शायर ही रच सकते हैं, यह एक निश्छल हृदय की ही शक्ति का परिचायक है। ऐसे कितने ही बिम्ब शैलेंद्र के आईने में दिखाई देते हैं।

इसी ग़ज़ल संग्रह की पर टिप्पणी में श्री कैलाश मंडलेकर कहते हैं कि शैलेंद्र शरण नई कविता के सिद्ध हस्ताक्षर हैं। उनकी कविता में मानवीय जीवन मूल्यों और सामाजिक सरोकारों के सघन बिम्ब होते हैं। यह प्रीतिकर और आश्वस्ति परक है कि वे इन दीनों हिन्दी ग़ज़ल भी उसी तेवर के साथ कह रहे हैं। उनके ग़ज़लों में एक ओर राजनीतिक दुराचरण तथा असंगतियों पर तीखे प्रहार होते हैं तो दूसरी तरफ प्रेम में विलगाव और प्रणयजन्य अनुभूतियों की तरलता भी होती है। अपनी ग़ज़लों में कभी वे शाख़ से बेवक़्त टूटे पत्तों की शिनाख़्त करते नज़र आते हैं और कभी यादों के ठिकाने तलाशते। दरअसल शैलेंद्र की ग़ज़लें हमारे समय की धड़कनों का भी पता देती हैं और बाज़ दफे भविष्तव्य की आहट का भी। हबीब हुबाब अपनी छोटी सी टिप्पणी में कहते हैं शैलेंद्र शरण की सकारात्मक और पारदर्शी सोच उनके लेखन में भी नज़र आती है।

साँस भरने लगी परिंदों की / होगी बाधित उड़ान अब शायद।

जैसा यादगार शेर, शैलेंद्र शरण की ग़ज़लों की ख़ासियत है। जैसा कि शैलेंद्र शरण अपने कथन में कहते हैं कि जुलाई 2017 से उनका ग़ज़ल का सफ़र आरंभ हुआ है। इतने कम समय में ग़ज़ल संग्रह लाना बड़ी बात है किन्तु इस शीघ्रता में उनसे मात्राओं को साधने में चूक हुई हैं तो बहर का अनुशासन साधने में भी। यह उनका पहला ग़ज़ल संग्रह है, मगर अब जब भी आगे उनका कोई ग़ज़ल संग्रह आए तो उनको इस दिशा में भी गंभीरता से सोचना होगा। ग़ज़ल मात्राओं के अनुशासन से बँधी होती हैं, वहाँ सावधानी से कार्य करना होता है।

कुल मिलाकर ग़ज़ल संग्रह बेहतर है और इस बेहतर की तलाश जारी रही तो शैलेंद्र शरण कविता की तरह ग़ज़लों में भी मुकाम हासिल करने का माद्दा रखते हैं।

❑❑❑

10 बी, डुप्लेक्स, वर्धमान सोसाइटी
राजपुर पूरा अकोला, 444001 (महा.)
मोबाइल: 94228 61524

समीक्षा

कफ़्र्यू लगा है

समीक्षक : अशोक गुजराती

लेखक : प्रकाश पुरोहित

प्रकाशक : कश्यप पब्लिकेशन

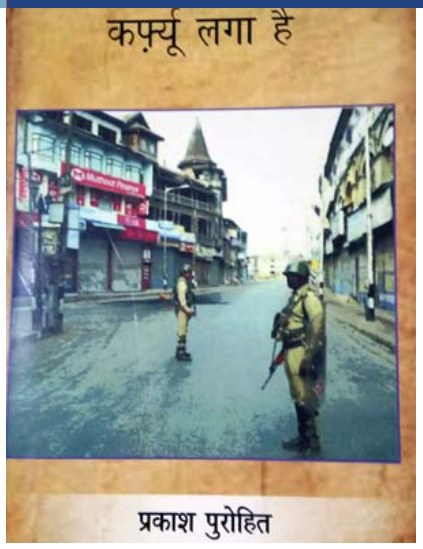

जब भी हम ग़ज़ल की बात करेंगे, तय है कि हमको प्रारंभ और अंत करना पड़ेगा ग़ालिब पर ही। ठीक है कि उन्होंने उर्दू-फ़ारसी में ग़ज़लें कहीं, जो आज हिन्दी मिश्रित उर्दू में आने लगी हैं, चाहे वह उर्दू का शायर हो या हिन्दी का।

प्रकाश पुरोहित अपनी इस किताब की भूमिका में लिखते हैं- 'पन्द्रह वर्ष की उम्र में मैंने पहली बार दीवाने-ग़ालिब (लघु पुस्तिका स्वरूप) पढ़ा था। इतना तो याद नहीं, उस समय यह किताब कैसे और कहाँ से मेरे हाथ लगी। लेकिन इतना ज़रूर याद है कि पूरी किताब पढ़ लेने के बाद उसकी बीस प्रतिशत ग़ज़लें ही मुझे बमुश्किल समझीं। जो कुछ भी मेरी समझ में आया, उस समझ ने मुझे अजीब क़िस्म की ख़ुशी दी। नतीज़तन शेरों-शायरी की किताबें पढ़ने का मेरा शौक़ बढ़ता गया। अगले कुछ सालों तक कई नामचीन शायरों को मैं पढ़ता रहा। नतीज़ा यह हुआ कि मुझको लिखने का चस्का लगा...' तब प्रकाश ने पहली जो ग़ज़ल कही, उसके दो शेर हैं- 'ज़िन्दगी बड़ी हो गई/साँस हथकड़ी हो गई' और 'लड़खड़ाती ज़िन्दगी ने/तुम्हें देखा, खड़ी हो गई'।

इस छोटी बहर की ग़ज़ल में जो उन्होंने वर्षों पूर्व लिखा था, आज भी तरोताज़ा है। इसी मीटर में उनकी अद्यतन आई ग़ज़लें अपनी गहराई के कारण समसामयिक ग़ज़लों की बराबरी में उतरती हैं। उन्हीं से उठाए गए कुछ अशआर यहाँ प्रस्तुत हैं- 'ये कैसे चटका पेड़/नदी के तट का पेड़!'; 'हूँ आग मैं, सोना है तू/मुझमें पिघलकर देखना'; 'रुकी चार दिन फुर्र हुई/बिटिया है या चिड़िया है'; 'बाग़ बग़ीचे बातों में, मन में खरपतवार बहुत'। इसी तरह इस संग्रह के शीर्षक 'कफ़्र्यू लगा है' से जुड़े शेर हमें दारुण होती जा रही वर्तमान परिस्थितियों से रू-ब-रू कराते हैं- 'घूमते हैं सिर्फ़ सन्नाटे गली में/आदमी है लापता, कफ़्र्यू लगा है'; 'आग का दरिया मकानों तक ना पहुँचे/हो दुकानों का भला, कफ़्र्यू लगा है'; 'तू भी दंगे में दुकानें लूट ले/फ़र्ज़ तेरा भी अदा होते रहे'; 'क़ाफ़िले गर रुके नहीं होते/रास्ते में लुटे नहीं होते'; 'उसकी ज़ुबान फिर से खुली झूठ के ख़िलाफ़/वो फिर से बच गया है बाल-बाल देखिए'; 'बेवजह बात तो नहीं होती/बेसबब हादसे नहीं होते'; 'कल ज़िन्दगी में पहली बार खुलकर हँसा मैं/कैसे कहूँ कि मेरे लिए हादसा न था'। और एक शेर का देश के बिगड़े हुए मज़हबी हालात में ज़िक्र करना लाज़िमी हो गया है- 'अम्नो-सुकून की वहाँ क्या उम्मीद करें, गद्दीनशीन ही जहाँ फ़िरक़ापरस्त हों...'

प्रेम को लेकर प्रकाश ने कई रचनाएँ लिखी हैं। मैं तो यह कहूँगा कि यह पहलू उनके दीगर विषयों पर हावी होता लगता है। अन्य सामाजिक विडम्बनाओं पर वे और लिखते तो बेहतर होता लेकिन यह अपनी-अपनी फ़ितरत है। उन्होंने प्यार या आपसी सम्बन्धों पर बहुत ही खुलकर और खिलकर लिखा है। उदाहरण के रूप में चन्द अशआर पेश हैं... 'हमने तो ख़ैर प्यार में अच्छा नहीं किया/ग़ैरों के साथ आपने क्या-क्या नहीं किया'; 'अजनबी लगने लगी उसकी लिखावट/अब उसे ख़त सोचकर लिक्खा करेंगे'; 'मिल गए गर मुद्दतों बाद तो फिर/टकटकी बाँधे तुम्हें देखा करेंगे'; 'वो ऐसे तो पहले कभी न थे/वो वैसे थे, ऐसे हो गए'। इतर रिश्ते-नातों... मसलन, दोस्ती या पारिवारिक लगावों की तह तक जाने की उनकी कोशिश क़ाबिले-तारीफ़ है- 'वक़्त आने पर इसे लौटाऊँगा/बात खाते में जमा है आपकी'; 'उधर माँ-बाप की अर्थी उठी/इधर बेटों के हिस्से हो गए'; 'घर भाई का हो या दोस्त का/कम से कम सौ गज़ की दूरी चाहिए'; 'कल आपको बहुत ज़रूरी काम है उनसे/रास्ते में वो मिले तो राम-राम कीजिए'; 'बस यूँ ही बेवजह कभी तशरीफ़ लाइए/ये शर्त नहीं कि आपको मुझसे काम हो'; 'पहले पापा प्रश्न किया करते थे/अब देना पड़ता है उत्तर बेटे को'; 'है अगर तकलीफ़, रिश्ता तोड़ लेना चाहिए/हो अगर मुमकिन दोबारा जोड़ लेना चाहिए'। दुनिया के दुख-दर्द को भी उन्होंने बहुत ख़ूबी के साथ अपनी ग़ज़लों में बाँधा है... 'आँसुओं की फ़सल उगाता हूँ/दर्द की मेरी खेती-बाड़ी है'; 'मौत स्टेशन का नाम है गोया/ज़िन्दगी जैसे रेलगाड़ी है'; 'भीतर से है वो दुखी बहुत/कहता है 'सब बढ़िया है'; 'भूख ने दानिशवरों से छीन ली दानिशवरी/फ़लसफ़े सारे रोटियों में सिमटकर आ गए' तथा 'ज़िन्दगी से रोज़ समझौता करेंगे/लोग हैं मजबूर अब ऐसा करेंगे'। और अंत में उन्होंने हिन्दी-उर्दू अदब के संगम को सर्वोत्तम दर्ज़ा दे दिया है अपने इस शेर में... 'प्यार वो मिला हमको दोनों ज़ुबानों से कि हम

मौलवी हिन्दी के, उर्दू के पुरोहित हो गए'

❐❐❐

बी-40, एफ़-1, दिलशाद कालोनी, दिल्ली-110 095.
मोबाइल: 09971744164. ईमेल : ashokgujarati07@gmail.com

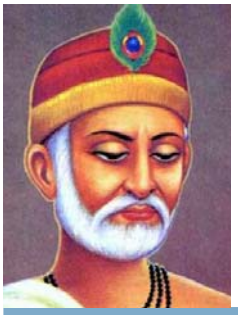

समीक्षा

कहत कबीर

समीक्षक : सत्यानंद 'सत्य'

लेखक : डॉ. सुरेश पटेल

प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन

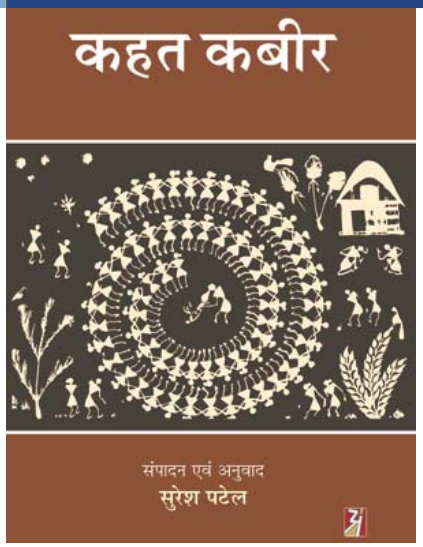

अन्तर्राष्ट्रीय भजन गायक पद्मश्री प्रह्लाद सिंह जी टिपानिया जी के आश्रम पर कबीर के सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन के प्रणेता डॉ सुरेश पटेल इंदौर ने अपनी अनुपम कृति 'कहत कबीर' मुझे सप्रेम भेंट की जिसे पढ़कर कबीर के क्रांतिकारी स्वरूप से रू-ब-रू हुआ।

अंतिका प्रकाशन, गाज़ियाबाद से प्रकाशित 'कहत कबीर' 176 पृष्ठ का एक अद्भुत संकलन है, जिसका सम्पादन सुरेश पटेल ने किया है ! जिसमें कबीरचौरा, वाराणसी के मानवतावादी संत आचार्य विवेकदास के लेख सहित ग्यारह लेखकों के लेख संकलित हैं !

संत कबीर के चुने हुए लगभग 80 पद व्याख्या सहित दिए गए हैं, कुछ साखियाँ भी दी गई है ! पदों का चयन इस प्रकार किया है कि संत कबीर के सामाजिक क्रांतिकारी व्यक्तित्व को देश और दुनिया के सामने उजागर किया गया है !

संसार के सभी क्रांतिकारी सन्तों और महापुरुषों के साथ उनके अनुयाईयों और विरोधियों ने अज्ञान या एक साज़िश के तहत उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व को छिपाया गया या उनके क्रांतिकारी विचारों को नज़रअंदाज़ करने का प्रयास किया गया है !

कबीर के भक्तों और विरोधियों ने यही कार्य किया है जिसका पर्दाफाश करते हुए सुरेश पटेल अपने सम्पादकीय में लिखते हैं – 'एक षड्यंत्र के तहत कबीर के पूरे आंदोलन को शनैः शनैः आध्यात्मिक रूप में अवतरित कर दिया गया ! उनके कार्यों एवं विचारों के आंदोलनकारी रूप को भुला दिया गया ! षड्यंत्रकारियों के लिए यह ज़्यादा सुविधाजनक था, क्योंकि यह उन्हें सुरक्षा की गारंटी देता था, इसीलिए कबीर के वे पद ज़्यादा प्रचलन में आए जो भक्ति सम्बन्धी या गुरुमहिमा का वर्णन करते थे, वे पद किनारे कर दिए गए जो जातिवाद, छुआछूत, पाखण्ड, अंधविश्वास साम्प्रदायिकता विरोधी थे एवं मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित करते थे !' पृष्ठ 7-8 कहत कबीर

इसी बात को आचार्य संत विवेकदास जी ने भी अपने लेख – 'कबीर का पथ खांडे की धार' में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं – 'कबीर साहब का रास्ता 'खांडे की धार' है ! पुरोहितवाद और सामन्तवाद के शिकंजे से मुक्ति दिलाने के लिए ही चूँकि भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ था ! पृष्ठ -17 कहत कबीर

आस्था और विश्वास की अति कैसे अनुयाईयों को अंधा बनाते हैं इसको स्पष्ट करते हुए विवेकदास जी आगे लिखते हैं – 'भटकाव का एक दूसरा पक्ष आस्था और विश्वास भी है ! साधारण लोगों में इसका डर पैदाकर गुणी कहे जाने वाले लोग अपना स्वार्थ साधते हैं ! आस्था और विश्वास तो एक आवश्यक पक्ष है, लेकिन अंध आस्था और ग़लत विश्वास दिशाहीनता की ओर ले जाता है ! यदि आस्था और विश्वास में समझ और उदारता का अभाव हो तो वे अपनी संकुचित बुद्धि की सीमा में बँध जाते हैं !... कबीर पंथ का एक बड़ा वर्ग कबीर को एक अवतारी ईश्वर और अलौकिक पुरुष मानता है, जबकि कबीर स्वयं इन सब पक्षों के ख़िलाफ़ थे !' पृष्ठ 18 कहत कबीर

दीपक मलिक अपने लेख -विखंडित समाज को जोड़ने की वैचारिकी में लिखते हैं – 'मेरा मानना है कि भारतीय समाज का एक सभ्य समाज में रूपांतरण का सबसे धारधार हथियार कबीर की वैचारिकी थी, न कि तुलसी रचित रामचरित मानस !' पृष्ठ-24 कहत कबीर

कबीर की आधुनिक युग में प्रासंगिकता के विषय में आप आगे लिखते हैं – 'भारतीय जीवन में लगभग सभी पंथों में अंधविश्वास, पाखण्ड, कर्मकांड, चमत्कार का अघोषित हमला है और अधिकांश पंथ इसके सामने घुटने टेक चुके हैं, इसलिए कबीर वैचारिकी को पुनः जागृत करना भारतीय पुनर्जागरण का सबसे कारगार बिंदु है !' पृष्ठ -25 कहत कबीर

'कबीर का दुखिया संसार' – रवि भूषण अपने लेख में कबीर के कवि व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं -'कबीर अभेद के कवि हैं ! जो भेद को माननेवाले हैं, कबीर उन्हें ललकारते हैं ! उनकी कविता सामंजस्य और समन्वय की कविता नहीं है ! वह विरोध, अस्वीकार, प्रतिरोध और क्रांति की कविता है ! जो झूठा, मक्कार और लबार है और मनुष्य को एक -दूसरे से पृथक और विभाजित करने वाली मानव निर्मित जितनी भी दीवारें हैं, वे उसे अपनी और कविता में ढहाते हैं ! कबीर की आकांक्षा एक ऐसे समाज और विश्व की है, जहाँ सभी मनुष्य बराबर है !' पृष्ठ -27 कहत कबीर

'कबीर और आज का समय' लेख में मैनेजर पांडेय संत कबीर के व्यक्तित्व और कविता के बारे में लिखते हैं -'शास्त्र के भय से

और कभी लोक के डर से उसे कहने का साहस सब में नहीं होता !' बिरला ही कोई निर्भय होकर अपने अनुभव का सत्य सबसे कहता है ! वही कबीर होता है कल, आज और कल भी !' पृष्ठ- 32 कहत कबीर

आगे वे लिखते हैं -'कबीर की कविता की दो बुनियादी विशेषताएँ हैं - अथक आलोचनात्मक चेतना और प्रश्न की प्रवत्ति ! उनकी आलोचनात्मक चेतना मूलगामी है ! वह जनता को जगाने वाली है और रूढ़ियों को चुनौती देने वाली !' पृष्ठ -33 कहत कबीर

'कबीर भक्तिकाल के सम्भवत: अकेले ऐसे संत कवि हैं, जिन्हें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई और बौद्ध सभी अपना मानते हैं! यही कारण है कि रवींद्रनाथ टैगोर ने कबीर को 'मुक्तिदूत' और 'भारत पथिक' कहा था और उन्हें राजा राममोहन राय का 'अग्र पथिक' घोषित किया था ! पृष्ठ -36 कहत कबीर

कपिल तिवारी अपने लेख में कबीर को 'भारतीय काव्य परम्परा की सबसे साहसी और दो टूक आवाज़' की उपमा देते हुए लिखते हैं - 'कबीर हमारी काव्य परम्परा की सबसे साहसी और दो टूक आवाज़ हैं ! उनमें अनगढ़ता और खुरदुरापन है, लेकिन उसकी सहजता और सच्चाई एक ऐसा परिष्कार रचती है जिसमें सारा अनगढ़पन खो जाता है और खुरदरापन प्रिय हो उठता है ! वह सत्य के साधक की फटकार है जो हमारे समाज, जीवन और धार्मिक आचरण में पाखण्ड के विरुद्ध है, क्योंकि कबीर साधना के स्वानुभव में एक वास्तविक धार्मिकता का आग्रह है ! वे जाति, वर्ण और नस्ल आदि के भेदभावों के कट्टर विरोधी लेकिन एक सच्चे आदमी के हृदय में फूटती प्रार्थना का सम्मान करने वाले संत हैं, इसलिए वे हमारी परंपरा का सबसे प्रामाणिक प्रतिपक्ष हैं !' पृष्ठ-42 कहत कबीर

'कबीर का सम्पूर्ण काव्य एक संत का जन सम्बोधन है ! .... वे दलितों और उपेक्षितों को सम्बोधन और श्रवण का अधिकार देने वाले संत हैं !' अरुण कुमार का लेख - एक संत का जन सम्बोधन ! पृष्ठ - 44 कहत कबीर

देवी प्रसाद मौर्य अपने लेख में लिखते हैं -'कबीर ही नहीं उनके जैसे दस्तकार और निचली जातियों से आए ज्ञानमार्गी संत नामदेव, रैदास, सांवता, दादू, चोखामेला ये सभी चेतनागत विद्रोह के कारण जात-पात, ऊँच-नीच के भेदभाव को छोड़कर इस निराकार परमेश्वर के साधक बने जो सारी मानव जाति की समता और शांति का प्रतीक था! इस अर्थ में उन्हें भक्त भले कह लें, परंतु मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण के विरुद्ध खड़े होने की इच्छाशक्ति वाले ये संत स्वाभाविक तौर पर विवेकी और तर्कवान थे ! ख़तरा यह है कि कबीर और अन्य ज्ञानमार्गियों को रामानन्दी साधुओं की तरह (जो कि तथ्यात्मक और व्यवहारिक रुप से झूठ है !) भक्त बताकर उनके सांस्कृतिक अंतर्विरोध के पैनेपन को बोथरा कर दिया जाएगा ! इस साजिश को समझा जाना चाहिए ! पृष्ठ -49 कहत कबीर

प्रकाश कांत अपने लेख -'कबीर की आध्यात्मिक और सामाजिक सरोकारों की कविता' में लिखते हैं - '(कबीर की) कविता धार्मिक सामाजिक अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ खड़ी बड़ी कविता है ! प्रतिरोध की कविता !...हैरानी की ही बात है कि सामाजिक न्याय की लड़ाई में इधर इस कविता का जिस तरह से इस्तेमाल होना चाहिए था हुआ नहीं !' पृष्ठ -52-53

'ढाई आखर प्रेम का' लेख में श्रीराम परिहार लिखते हैं -'कबीर ने धर्म की बुराई नहीं की! धर्म के मर्म को समझने एवं उसके केंद्र तक पहुँचने में जिन आडम्बरपूर्ण तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है, उन पर चोट की ! पोथी, वेद शास्त्र पढ़कर व्यक्ति विद्वान हो जाता है ! वह धर्म की व्याख्या करता है ! जीव, जगत की व्याख्या करता है ! वह स्वयं में भरा-भरा हो जाता है ! ज्ञान का ग़ुरूर उसे प्रेम की खाली कोठरी में घुसने नहीं देता !' पृष्ठ- 55

'कबीर का सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन' -सुरेश पटेल अपने लेख में लिखते हैं - 'कबीर का दुख ऐसे दुखिया संसार के लिए है जहाँ कपास उत्पादक कृषक अपने तन पर फ़टे कपड़े पहनता है ! उसके बच्चे नंगे बदन खेतों में काम करते हैं और ठिठुरती ठंड में आग के सामने बैठकर रातें काटते हैं तथा कर्ज से परेशान हो आत्महत्या करते हैं !....हमने ऐसा संसार बना लिया है कि इस सुखिया और दुखिया संसार को देखकर कबीर ने कहा -

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवे!
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवे।'

पृष्ठ- 58, कहत कबीर

'चला हंस उस देश'- चाँद सीताराम अपने लेख में हालैंड, सूरीनाम में बसे भारतीयों के बीच कबीरपंथ के प्रभाव और संत विवेकदास जी के योगदान को रेखांकित किया है !

लेखों के बाद पदों को व्याख्या सहित दिया गया है जिसमें -

मौंको कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में !
साधो भाई, जीवत ही करो आसा !
अनगढ़िया देवा, कौन करै तेरी सेवा !
मन मस्त हुआ तब क्यों बोले !
सन्तों सहज समाधि भली !
मन न रंगाए, रंगाए जोगी कापड़ा !
ना जाने तेरा साहिब कैसा है !
पंडित बाद बदंते झूठा !
साधो देखो जग बौराना !
तेरा मेरा मनुवा कैसे एक होई रे !
साधो पांडे निपुण कसाई !
साधो ये मुर्दे का गाँव !

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुस्तक में गागर में सागर भरने का प्रयास किया है ! कबीर के हज़ारों पद जो लोक में एवं साहित्य में बिखरे हैं उनका सार स्वरूप पद पुस्तक में सरल अर्थों के साथ संयोजित किए गए है। साथ ही पुस्तक के अंत में शब्दार्थ भी दिए गए हैं। पुस्तक में एक कमी रह गई है कि कोई भी लेख ऐसा नहीं है जिसमें कबीर के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त की घटनाओं का क्रमबद्ध अध्ययन हो सके ! जिसे अलगे संस्करण में सुधारा जाना चाहिए! फिर भी कबीर को समझने के लिए किताब बड़ी महत्त्वपूर्ण है आम आदमी के लिए भी और बुद्धिजीवियों के लिए भी कीमत भी 170 रुपये है जिसे आम पाठक आसानी से ख़रीद सकता है पुस्तक से होने वाली आय जनजागरूकता के कार्य में लगी संस्था कबीर जनविकास समूह इंदौर को समर्पित की गई है। जोकि बहुत प्रतिष्टित संस्था है।

❑❑❑

मोबाइल: 09827821803

समीक्षा

जोकर ज़िन्दाबाद

समीक्षक : अरविन्द कुमार खेड़े.

लेखक : शशिकांत सिंह 'शशि'

प्रकाशक : अमन प्रकाशन

युवा व्यंग्यकारों में शुमार शशिकांत सिंह 'शशि' एक जाना पहचाना नाम है। व्यंग्य जगत में उन्हें निरंतर पढ़ा और नोटिस किया जा रहा है। व्यंग्य में उनकी पकड़ मज़बूत है, इसलिए कि वे निरंतर लिख ही नहीं रहे हैं, निरंतर बेहतर लिख रहे हैं। उनकी शैली और औज़ार निरंतर मँझते जा रहे हैं। उनकी कलम प्रतिदिन पैनी और प्रखर होती जा रही है। जैसा कि विज्ञों का मत है, हर नई रचना पुरानी रचना से बेहतर और सधी हो, इस अपेक्षा को वे कायम रखने का हुनर रखते हैं।

अन्यों की बात करने से बेहतर है, उन्हीं की बात की जाए कि व्यंग्य उनके लिए क्या मायने रखता है। व्यंग्य को अन्य विधाओं से इतर इतना अधिक सशक्त और सीधे-सीधे तौर पर उत्तरदाई क्यों मानते हैं ? जैसा कि गाहे-बगाहे उनसे बात होती रहती है। वे कहते हैं कि, व्यंग्य एक मुकम्मल विचार है। व्यंग्य में गंभीरता अपरिहार्य है। और सबसे बड़ी बात यह कि, वह शोषितों, वंचितों और पीड़ितों के पक्ष में खड़ा रहता है। वह शासकों के विरुद्ध खड़ा होता है, उन नीति नियंताओं के विरुद्ध सदैव खड़ा मिलता है। और सीधे-सीधे लोहा लेता है। और शोषितों के पक्ष में उनकी आवाज़ को बुलंद करता है। वे यह भी कहते हैं कि, तोप से मच्छर नहीं मारे जाते हैं। जैसा कि व्यंग्य में यह प्रवृत्ति बहुत ही हास्यास्पद बन गई है। कूलर और कबाड़ियों पर लिखा जा रहा है। उन्हें किसान नहीं दिखते, बेरोज़गारी नहीं दिखती, भुखमरी नहीं दिखती। इसलिए व्यंग्य में उनका निशाना स्पष्ट है। उनका पक्ष स्पष्ट है कि आप एक साथ एक समय में बकरे और कसाई से मुहब्बत नहीं कर सकते हैं और न ही मुरव्वत। दोनों के साथ मुहब्बत हो सकती है, लेकिन बात जब मुद्दे की होगी तो अपने पक्ष को स्पष्ट करना ही होगा। कहा जा सकता है कि, वे पंक्ति में खड़े उस आम आदमी के साथ हैं, जो सदियों से पीड़ित और प्रताड़ित है।

सन 2001 में ''समरथ को नहि दोष'' के जरिये उन्होंने व्यंग्य जगत् में प्रवेश किया था। उसके बाद उन्होने एक से बढ़कर एक व्यंग्य रचनाएँ और संग्रह दिए हैं। 2013 में ''बटन दबाओ पार्थ'' 2016 में ''सागर मंथन चालू है'' 2017 में दो व्यंग्य उपन्यास ''प्रजातंत्र के प्रेत'' और ''दीमक'' से ज्ञात होता है कि, उनका रचना कौशल कमाल का है। वे कलम को सिद्ध कर चुके हैं। हाल ही में उनका नया व्यंग्य संग्रह ''जोकर ज़िन्दाबाद'' इस बात की बखूबी तसदीक करता है।

उनके व्यंग्यों को पढ़ने और समझने के लिए हमें काका शिवशम्भू के चिठ्ठे और अंधेर नगरी चौपट राजा से बात शुरू करनी होगी। फिर राग दरबारी से होते हुए आदरणीय श्री ज्ञान जी तक आना होगा। इतना कहने के पीछे मेरा आशय इतना कि वे पुरोधाओं की पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके व्यंग्य पुरोधाओं की पीढ़ी को आगे बढ़ाते हुए चलते हैं।

संग्रह ''जोकर ज़िन्दाबाद'' में कुल 25 व्यंग्य समाहित है। सभी प्रखर और पैनापन लिए हैं। रचनाओं को पढकर देखें तो उनके व्यंग्यों का मूल स्वर विरोध दर विरोध है, प्रतिरोध है। उनकी रचनाओं में उनके विरोध और निशान। पर सत्ता, सियासत और (कु) व्यवस्था है। ऐसी व्यवस्था तो बरसों से निरीह अवाम पर थोपी जा रही है, और अपना स्वार्थ बनाते आ रही है। सारी रचनाएँ इन्हीं विडम्बनाओं को रेखांकित करती है और परत दर पतर छद्म नैतिकता और आदर्शों के सारे आवरण हटाती है।

अपनी बात कहने में उन्हें अनूठे बिम्ब और रूपक रचने में उन्हें महारथ हासिल है। ऐसा कहा जाता है कि, बिम्बों और रूपकों के ज़रिये कहना लाजवाब और अनूठा अभिव्यक्त होता है। विरूपताएँ विभिन्न रूपों में प्रछिन्न होती है। जिन्हें देखने और समझने के लिए अन्य उपायों का सहारा नहीं लेना पड़ता है। इसलिए उनकी रचनाओं में पर्याप्त विविधता है। वे अपनी रचनाओं में पौराणिक आख्यानों तक ले जाते हैं। पौराणिक आख्यानों, प्रसिद्ध पात्रों और घटनाओं, रूपकों और बिम्बों में कुटिलता को साधना आसान नहीं होता है। लेकिन वे साधकर चमत्कृत कर देते हैं।

आज का परिदृश्य देखे तो, सदा हाशिए पर रहने वाले मसखरे और चाटुकार केन्द्र में आ चुके हैं। स्थिति त्रासद और हास्यास्पद बन चुकी है। जिनका कोई अस्तित्व नहीं वे देश, समाज को किस प्रकार दिशा और नेतृत्व दे सकेंगे ? समझ से परे हैं।

आम तौर पर पर व्यंग्य समकालीन, प्रासंगिक और तात्कालिक विषयों ओर मुद्दो पर लिखे जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि, तात्कालिक मुद्दों पर लिखे गए व्यंग्यों की उम्र और महत्ता कुछ समय तक ही रहती है लेकिन समकालीन और प्रासंगिक मुद्दों पर लिखे गए व्यंग्य लंबे समय तक अपना प्रभाव और असर अक्षुण्ण रखते हैं। ऐसे विषयों पर लिखे गए व्यंग्यों में देशकाल और

परिस्थितियों की अच्छी ख़ासी पड़ताल हो जाती है। उनकी सभी व्यंग्य रचनाएँ समकालीन और प्रासंगिक होने से लंबे समय तक असरकारी होती है। उनकी रचनाओं में सबसे बड़ी बात यह कि विसंगतियों को पकड़ने की दृष्टि पैनी है। शिक्षा जगत् की पोल खोलता उनका व्यंग्य उपन्यास ''दीमक'' में जहाँ मौजूदा दौर की विसंगतियों को रेखांकित किया है वहीं व्यंग्य ''लूक मिस्टर द्रोणाचार्य'' में शिक्षा जगत् की पुरातनकाल से आधुनिक दौर तक की विसंगतियों को निशाना बनाया है। वे अपनी रचना में शिक्षकों की मजबूरी को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, ''शिक्षक जब नौकरी करता है तो वह शिक्षक नहीं होता है। उसकी अपनी विवेक की शक्ति बंधक पड़ी रहती है। वह राजा को ख़ुश करने के लिए नौकरी करता है। बच्चों के विकास के लिए नहीं।'' इन पंक्तियों में शिक्षा और शिक्षा जगत् की कैसी कथा और व्यथा कह दी है।

राजा का चिंतन में राजा हमेशा अपने सुपुत्र की चिंता में निमग्न रहता है। उसे चिंता रहती है कि, सारथी का चाल चलन ठीक नहीं। वह कविताएँ लिखता है। राजा के विकास में बाधक बनेगा। सारथी को सख़्त हिदायत कि, ''पुत्र को भंगी चमारों की बस्ती में न ले जाए। पाश कॉलोनियों चक्कर कटवाकर ले आए। राज्य में गुड फील का माहौल बनाने के लिए प्रवाचकों की नियुक्ति। और प्रबंध कि एक व्यक्ति को पीट-पीट कर मार डाला कि उस पर गो-तस्करी का संदेह था।''

प्रतिनिधि व्यंग्य ''जोकर ज़िन्दाबाद'' अंधेर नगरी चौपट राजा से आगे की कहानी है। आधुनिक परिदृष्य में लिखा गया है। वही मातहत, चाटुकार और सिपहसालार राजा के। ''ताशपुरम'' एक दुनिया रची गई है। जहाँ इक्के दुक्के और तिक्के अपना कमाल दिखाते हैं। कमाल देखिए, ''ऐसे कुत्तो को मार दिया जाए जो दुम नहीं हिला पाते। जो कुत्ता दुम ही न हिलाए वह किस काम का कुत्ता ?''

''सियारवाद'' ऐसी मुकम्मल रचना है ऐसे चरित्र को उजागर करती है जो अपने मतलब और स्वार्थ के लिए देश को बेच खाए। मार्क्सवाद, समाजवाद, गाँधीवाद, लोहियावाद के बाद आज एक और वाद ''सियारवाद'' सिर चढ़कर बोल रहा है। ''सच्चा सियारवादी केवल सत्ता चाहता है। सत्ता ही अमरता का सोपान है। सत्ता में आते ही सारे अवगुण गुणों में बदल जाते हैं।''

''देवता मौन में'' है में उन्होंने किसानों की दुर्दशा का वर्णन कहा है। राज्य के विकास के लिए राजा किसानों से लगान लेता है। और अनाज का अंश भी। राजा खेती नहीं करता। किसान अपनी समस्या लेकर देवता के पास आते हैं। लेकिन देवताओं के पास किसानों की किसी समस्या का समाधान नहीं होता। देवता, राजा का पक्ष ले या किसानों का ?

''एक डॉक्टर की कथा'' में आम ग़रीब मरीजों से लूट खसोटने वाली चिकित्सा जगत में व्याप्त विगंतियों को उजागर किया है। ''कचहरी कथा'' में न्याय जगत् की दुर्बलताओं का फायदा पहुँचाती न्याय व्यवस्था पर कटाक्ष है। अपनी दमदार रचना ''कच्छपनीति'' में उन्होंने अपने खोल में रहकर सुखपूर्वक जीवन जीने वाले कच्छपों को आड़े हाथों लिया है। मठाधीशों, और गिरोहबंदी की प्रवृत्तियों का खुलासा करती, रचना ''पुरस्कार पात्रता परीक्षा'' अंदरूनी हालात को बाहर लाती है।

संग्रह को पढ़कर कह सकते हैं कि, संग्रह के सभी व्यंग्य बहुत ही सशक्त और मारक हैं। संग्रह की अन्य रचनाओं यथा हस्तीनापुर में चुनाव, जानवर सुधार गृह, युधिष्टिर की आँख, बाबा ब्रांड केवलम, भारत माता की गठरी, दलितों का कुआँ, सनातन आदेश पत्र, में उनका तेवर देखते ही बनता है। उनकी शैली बहुत ही मंझी हुई है। भाषा और वक्रोक्ति भी समृद्ध है। इसमें कोई दो राय नहीं कि विगंतियों को पकड़ना और उन पर सटीक प्रहार करना ये भी उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। अपने व्यंग्यों में जो मिसाइलें चलाते हैं, वे पूर्णत: अनूठी और सर्वथा अपनी मौलिक तकनीक है।

❐❐❐

20, श्री विनायक कुन्ज कॉलोनी,
मांडू रोड़, धार, जिला-धार,
मध्य-प्रदेश, पिनकोड-454001
मो-9926527654
ईमेल-arvind.khede@gmail.com

पुस्तक चर्चा

शतदल

समीक्षक : सुरेश सौरभ
लेखक: मृदुला शुक्ला
प्रकाशक: नमन प्रकाशन

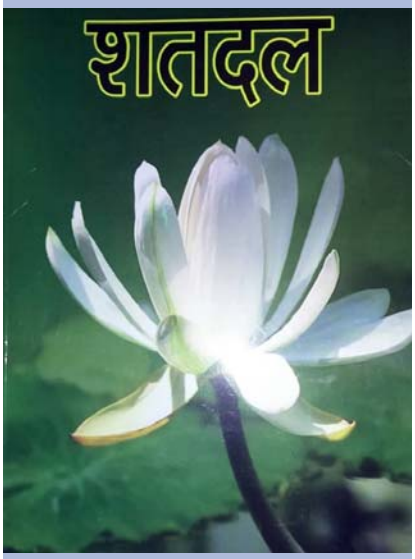

मृदुला शुक्ला की कविताएँ सहजता से पाठकों के हृदय की बात करती प्रतीत होती हैं। 'शतदल' अभी प्रकाशित होकर आया उनका काव्य संग्रह हिंदी काव्य जगत् में अपनी गहरी पहचान बना रहा है। इससे पहले मृदुला के दो काव्य संग्रह मृदुलांजलि और भक्त्यांजलि पाठकों में चर्चित और प्रशंसित हो चुके हैं। व्यवसायिकता की अंधी दौड़ में जहाँ संवेदनाएँ तार-तार हो रहीं हो ऐसे में मृदुला अध्यात्मिक चेतना से समाज की बिखरी -टूटी संवेदनाओं को पुरज़ोर जोड़ने की कोशिश करती हुई दीख पड़ती हैं। श्रृंगार की विस्तृत भाव भूमि पर मृदुला की कविताएँ पाठकों के हृदयों में समता- ममता का बीजारोपण करती हुई महसूस होती हैं। मृदुला की कविताएँ, समय के साथ चलती हुई पावन गंगा की धारा के समान समाज के कोर- कोर, पोर-पोर में हलचल करती हुई आगे बढ़ती हैं। बहरहाल उनकी शतदल की सौ कविताओं का हिंदी जगत् स्वागत ज़रूर करेगा।

❐❐❐

सुरेश सौरभ निर्मल नगर लखीमपुर खीरी
उत्तर प्रदेश

समीक्षा

मूल्यहीनता का संत्रास

समीक्षक : सतीश राठी

लेखक : डॉ. लता अग्रवाल

प्रकाशक : जी. एस. पब्लिशर

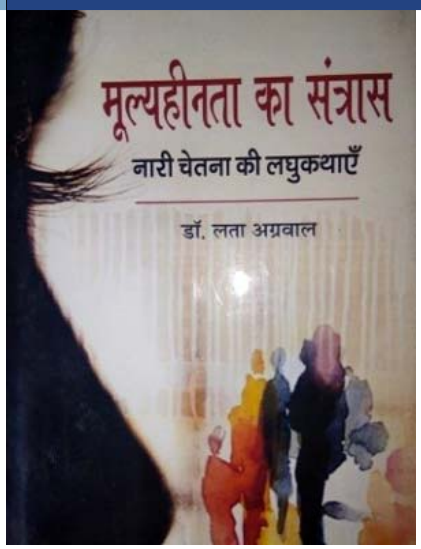

मूल्यहीनता का संत्रास स्त्री की आँख से देखी गई वह लघु कथाएँ हैं जो नारी के की चेतना को जागृत कर उसे साहस की दिशा दिखलाती है। वर्तमान कठिन समय जीवन मूल्यों को मरते हुए देखने का समय है, ऐसे वक्त में यदि कोई पुस्तक अपनी रचनाओं के माध्यम से जीवन मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास करती है तो निश्चय ही वह सराहना किए जाने के योग्य है। इसी सदी के दूसरे दशक का आरंभ लघुकथा के क्षेत्र में बहुत सारा नया और मजबूत लेखन लेकर सामने आया है।

वर्ष 2004 से 2010 तक के लगभग शून्यकाल को यदि हम छोड़ दें तो पाएँगे वर्ष 2011 से लघुकथा का परिदृश्य ढेर सारा नवीन लेखन अपने साथ लेकर आया है। लघुकथा की इस नई पीढ़ी में महिलाओं की संख्या बहुत अधिक है क्योंकि समाज में भी महिलाओं की चिंता के ढेर सारे विषय पैदा हो गए हैं और उन सारी चिंताओं को उनके सारे संदर्भों के साथ समाज के समक्ष रखे जाने की अनिवार्यता हो गई है, इसलिए लेखिकाओं ने ने बड़े साहस और गम्भीर चिन्तन के साथ यह सारे विषय अपनी लघुकथाओं के द्वारा समाज के समक्ष प्रस्तुत किए हैं।

'मूल्यहीनता का संत्रास' डॉ लता अग्रवाल का नारी चेतना पर आधारित लघुकथा संग्रह है जिसमें उनकी प्राध्यापकीय दृष्टि संपन्नता ने पूरी परिपक्वता के साथ इन लघुकथाओं को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। नारी जीवन की विभिन्न समस्याओं को विसंगतियाँ को तकलीफों को पीड़ा को उन्होंने करीब से महसूस किया है। जहाँ उन्होंने स्त्री के प्रति स्त्री की दृष्टि का दोष भी देखा है तो उसे भी उन्होंने रेखांकित किया है। इसके साथ ही उन्होंने लघुकथाओं में स्त्री के स्वाभिमान को पुन: स्थापित करने की कोशिश की है। लघुकथाओं की भाषा में सोच का तीखापन है।

उनकी लघुकथाओं के माध्यम से स्त्री चेतना का स्वर सामने आया है जो पाठक को प्रभावित करता है। आज के पुरुष प्रधान समाज में लता जी स्त्री संवेदना को अपने मन से महसूस करती हैं। पौराणिक पात्रों में भी स्त्री के प्रति हो चुकी है अन्याय के ख़िलाफ़ उनके हृदय की अग्नि सदैव प्रस्फुटित होती रहती है। लगता है स्त्री की पीड़ा को वह पहले जीती हैं, फिर लिखती हैं इससे वह पीड़ा उनकी लघुकथाओं में स्वाभाविक रूप से उभरकर आती है। 'आशीष, प्रतिमा, विसर्जन, तवायफ का बेटा, नज़रिया, बंद लिफाफा, टकसाली रिश्ता, पराया धन, मूल्य, पति की सत्ता, आदि ऐसी ही कुछ लघुकथाएँ हैं जिनमें यह पीड़ा सामने आती है। एक नन्हीं बच्ची द्वारा यह पंक्ति हृदय को उद्वेलित करती है।

''बाबा ! देवि केवल पूजन और विसर्जन के लिए होती है, क्या उन्हें घर में नहीं रखा जा सकता।'' (प्रतिमा विसर्जन)

उनकी कुछ लघुकथाओं में पीड़ा पीने वाली स्त्रियों का स्वरूप बदल कर एक साहसी स्त्री का स्वरूप सामने आता है जो हर विपरीत स्थिति के ख़िलाफ़ खड़े होने का साहस रखती हैं, जैसे -'मैं ही कृष्ण हूँ, सुहागन, आस्था, उमराव जान, रीढ़ की हड्डी, नपुंसक, पवित्रता, श्रावणी, साझेदारी, सुहाग चिह्न आदि कुछ लघुकथाएँ हैं जो उस साहस को सामने लेकर आती हैं यथा - ''फिर कोई कदम कोठे पर जाने को विवश न हो।'' (उमराव जान)

'बंजर ज़मीन' का नकारात्मक स्वर अखरता है एवं उसका संवाद, 'बंजर खेत पर हल चलाने से क्या फायदा' कुछ अतिरिक्त बोल्डनेस के साथ रचा गया है। 'सास का मान' एक कमज़ोर कथा है, मेरे विचार से इस रचना को वे ख़ारिज कर सकती हैं। 'माँ का प्रतिरूप' में जीवन का सकारात्मक स्वरूप सामने आता है। 'बिन ब्याही माँ की त्रासदी को शीर्षक कथा 'मूल्यहीनता का संत्रास' में बहुत ही बेहतर तरीके से रचा गया है।

कुल मिलाकर अधिकांश लघुकथाओं में जीवन मूल्यों को समझाने का प्रयास किया गया है। मध्यमवर्ग के जीवन में हमारे आस- पास ढेर सारी लघुकथाएँ बिखरी हुई मिलती है और उन कथाओं में से ही जीवन के सूत्र और संस्कार निकलकर सामने आते हैं। स्त्री देह की पीड़ा, उसके अभाव की पीड़ा और उसके ममत्व की खिलाफत से उपजी पीड़ा के संसार में उन्होंने भीतर तक झाँक कर देखा और रचा है। लता जी कथा के बीज को अपने मन में रोपकर उसे सहेज लेती हैं, फिर उसे भाषा शिल्प का खाद पानी देकर एक पौधे के रूप में जीवन प्रदान करने की ताक़त रखती हैं। यही संवेदना दूसरे संग्रह में और आगे की सुगठित कथाओं के रूप में आने की संभावना इस पुस्तक में दिखाई देती है।

❐❐❐

आर 451 महालक्ष्मी नगर, इंदौर 45 20 10 (मध्य प्रदेश)
मोबाइल: 9425067204

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

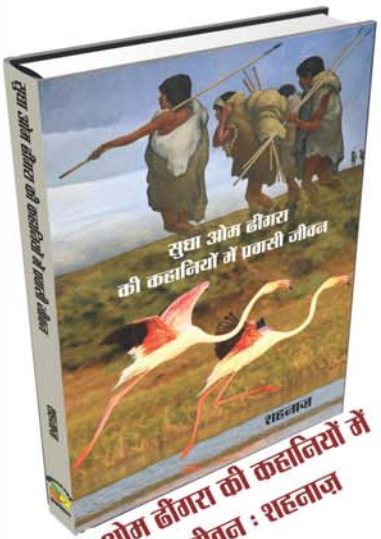

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में प्रवासी जीवन : शहनाज़

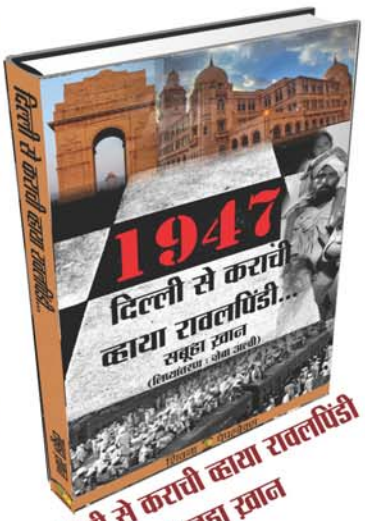

दिल्ली से कराची व्हाया रावलपिंडी
सबूहा ख़ान

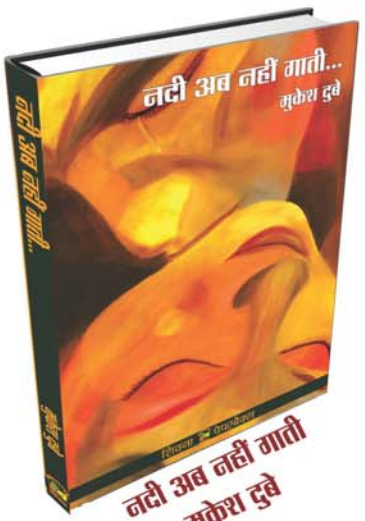

नदी अब नहीं गाती
मुकेश दुबे

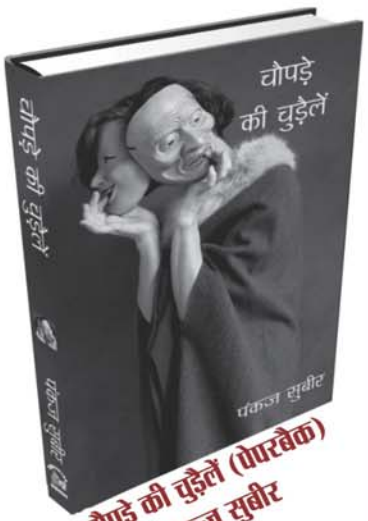

चौपड़े की चुड़ैलें (पेपरबैक)
पंकज सुबीर

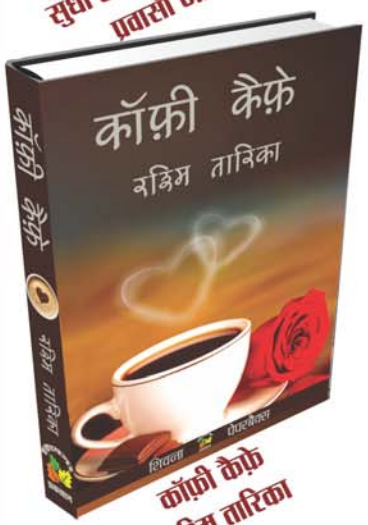

कॉफ़ी कैफ़े
रश्मि तारिका

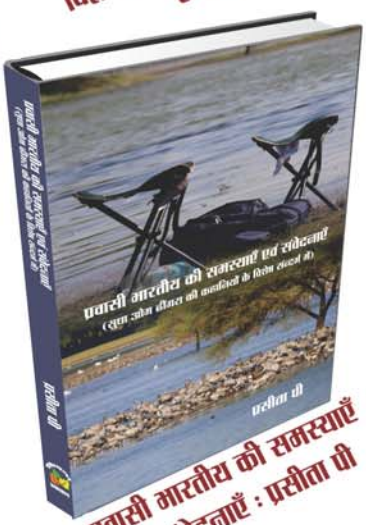

प्रवासी भारतीय की समस्याएँ एवं संवेदनाएँ : प्रसीता पी

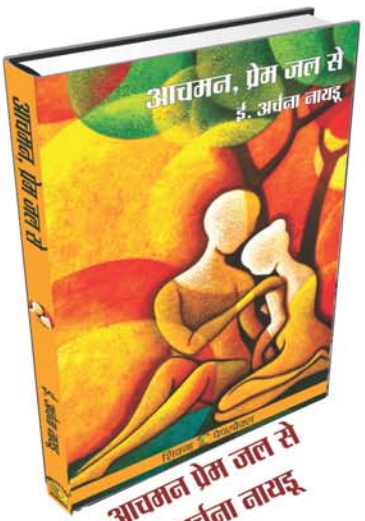

आचमन प्रेम जल से
ई. अर्चना नायडू

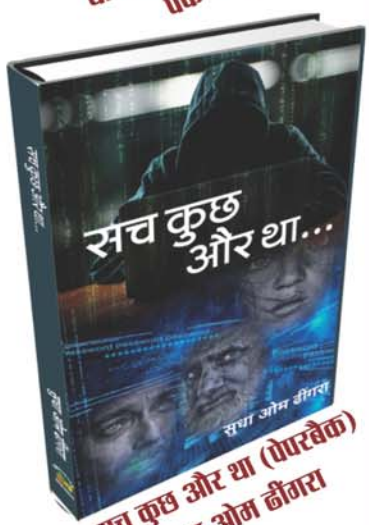

सच कुछ और था (पेपरबैक)
सुधा ओम ढींगरा

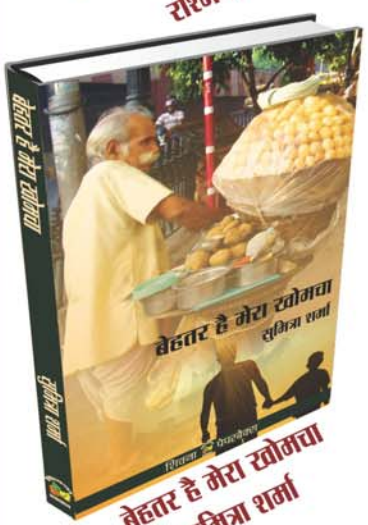

बेहतर है मेरा खोमचा
सुमित्रा शर्मा

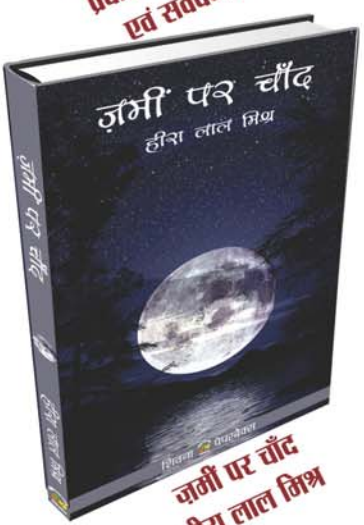

ज़मीं पर चाँद
हीरा लाल मिश्र

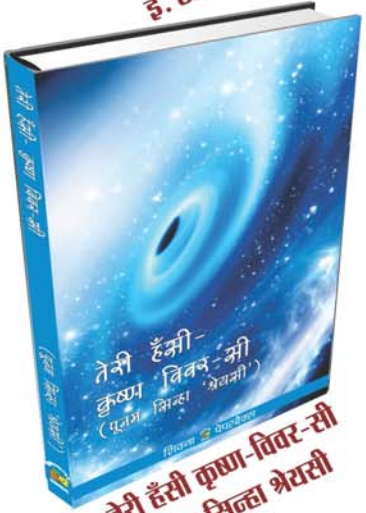

तेरी हँसी कृष्ण-विवर-सी
पूनम सिन्हा श्रेयसी

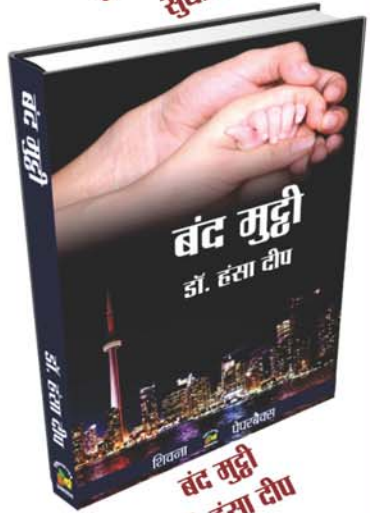

बंद मुट्ठी
डॉ. हंसा दीप

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

शोध दृष्टि - सुधा ओम ढींगरा का साहित्य
(शोध-आलेख संग्रह)
बलबीर सिंह, प्रकाश चंद बैरवा

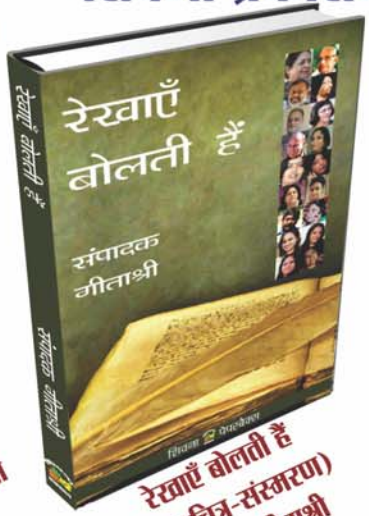

रेखाएँ बोलती हैं
(रेखाचित्र-संस्मरण)
संपादक गीताश्री

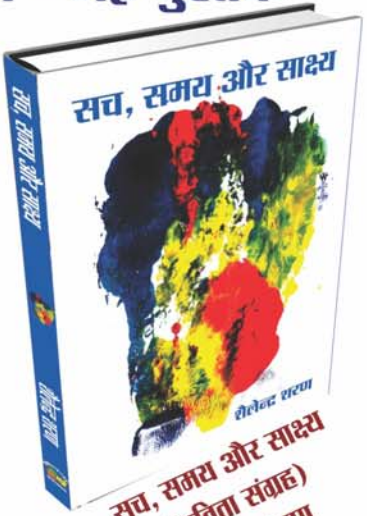

सच, समय और साक्ष्य
(कविता संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

ख़ामोश आवाज़ें
(उर्दू कहानी संग्रह)
सैयद असद मेहदी

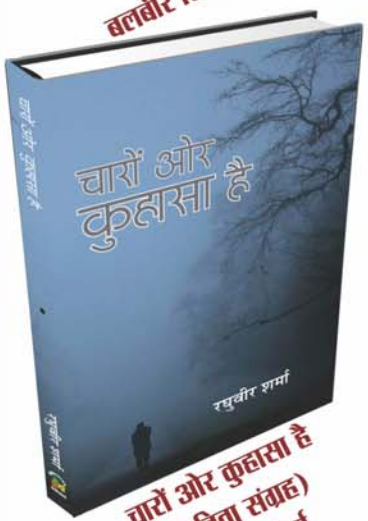

चारों ओर कुहासा है
(कविता संग्रह)
रघुवीर शर्मा

संकल्प और सपने
(लघुकथा संग्रह)
सदाशिव कौतुक

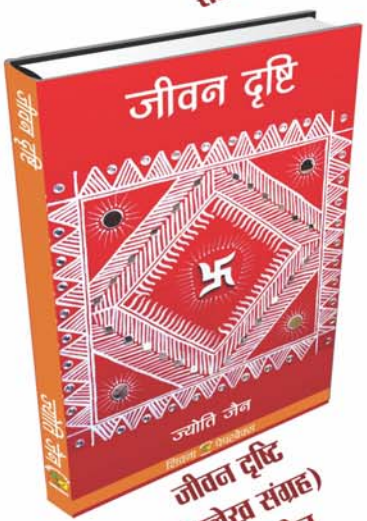

जीवन दृष्टि
(आलेख संग्रह)
ज्योति जैन

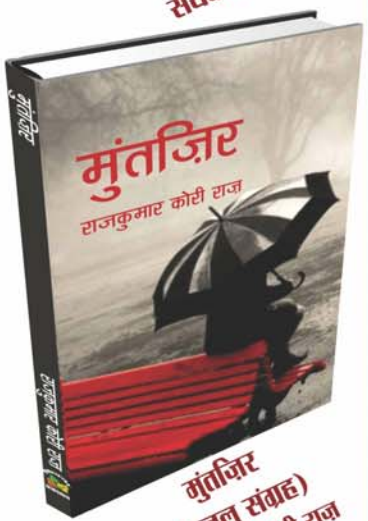

मुंतज़िर
(ग़ज़ल संग्रह)
राजकुमार कोरी राज

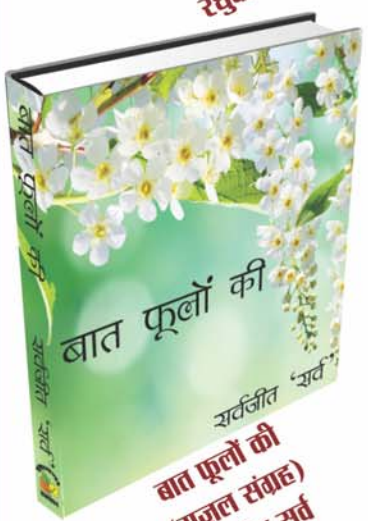

बात फूलों की
(ग़ज़ल संग्रह)
सर्वजीत सर्व

अभी तुम इश्क़ में हो...(पेपरबैक)
(ग़ज़ल संग्रह)
पंकज सुबीर

थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर
(ग़ज़ल संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

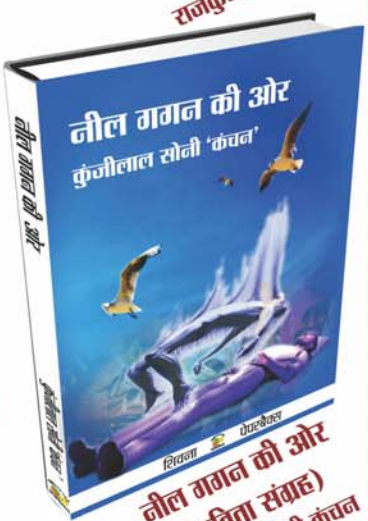

नील गगन की ओर
(कविता संग्रह)
कुंजीलाल सोनी कंचन

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।